श्री यमुनाष्टकम्

श्रीमद् वल्लभाचार्य - चरण - विरचितम्

''नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा''

आनन्द कन्द नन्दनन्दन वल्लभाधीश प्रभु श्रीनाथ जी

आचार्य वर्य्य गोस्वामि तिलकायित

श्री १०८ श्री इन्द्रदमन जी (श्री राकेश जी) महाराज श्री

नाथद्वारा

जन्म तिथि : फाल्गुन शुक्ल ७
विक्रम संवत् - २००६

जन्म दिनांक २४ फरवरी
सन् - १९५०

गो.चि. श्री 105 श्री भूपेशकुमारजी (विशाल बाबा)

नाथद्वारा

जन्म दिनांक
५ जनवरी सन् १९८१

जन्म तिथि : पौष कृष्ण ३०
विक्रम संवत् २०३७

।। श्रीगोवर्धनधरो विजयतेतराम् ।।

श्री तिलकायित महाराजश्री - निजपुस्तकालय -
- विद्या - मंदिर - नाथद्वारा का - द्वितीय - पुष्प

श्रीमद् - भगवद्वदन - वैश्वानरावतार - श्रीवल्लभाचार्य - विरचितम्

श्री यमुनाष्टकम्

आचार्य वर्य्य गो. ति. श्री १०८ श्री इन्द्रदमन जी (श्री राकेश जी)
महाराज श्री की आज्ञा से प्रकाशित
श्रीमत्प्रभु - चरण - प्रभृति - विरचित विवृतियों आदि पर आधारित
'श्रीगोविंद - तोषिणी' हिंदी - गद्यपद्यात्मक
व्याख्यासहित
(चित्रावलिसे समलंकृत)

-: संशोधक :-
यदुनन्दन त्रिपाठी श्री नारायण जी शास्त्री
अध्यक्ष विद्या विभाग

-: प्रकाशक :-
विद्या विभाग, मन्दिर मण्डल
नाथद्वारा (राज.)

-: व्याख्याता :-
कविरत्न आर. कलाधर भट्ट, एम.ए.एल.एल.बी.

श्रीवल्लभाब्दा : ५३७
तृतीयावृत्ति २०००
सं. २०७३
न्योछावर ४५/-

।। श्री ।।

-: निवेदन :-

अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद्गुरू महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य द्वारा विरचित षोडश ग्रन्थों का पुष्टिमार्ग में महत्वपूर्ण स्थान हैं। षोडश ग्रन्थान्तर्गत श्री यमुनाष्टक को मङ्गलाचरण माना गया है। 'श्री यमुनाष्टकम्' एक अनवद्यसर्वाङ्ग सुन्दर कृति है। यह अति सुन्दर कार्य आचार्य श्रीमहा प्रभु जी के अनुग्रह का ही विशेष फल है। श्री आर.कलाधर जी भट्ट संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी वाङ्मय तथा विभिन्न विषयों के विचक्षण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। इसी कारण नि.ली.गो.ति. श्री १०८ श्री गोविन्द लाल जी महाराज श्री ने श्री भट्ट जी को यमुनाष्टक पर लिखने के लिये आज्ञा प्रदान की थी। श्री भट्टजी जी ने सर्वप्रथम अति सुन्दर वैदुष्यपूर्ण कृति की रचना की है। भाषा शैली ओजस्विनी है तथा प्रसाद गुणयुक्त है। श्री यमुनाष्टक का विवेचन पाण्डित्यपूर्ण है तथा स्व प्रतिभाधनी ने सप्रमाण नवीन अर्थावबोधन भी दिया है। अप्रामाणिक कथन किंचित् भी दृष्टि गोचर नहीं होता है।

श्रीमत्प्रभुचरण प्रभृति आचार्यों की विवृत्तियों पर आधारित यह व्याख्या मौलिक जैसी परिलक्षित होती है। इसका कारण यह है कि श्रीभट्टजी के पूर्वज भी अत्यन्त प्रतिभा संपन्न महाकवि थे। वंशानुगत नैसर्गिक काव्यप्रतिभा श्रीभट्ट जी में भी संपूर्ण रूप से विकसित हुई थी जो पद्यबद्ध अनुवाद प्रत्यक्ष है। अनेक विध प्रवृत्तियों में संलग्न श्रीभट्टजी द्वारा यह की गयी सांप्रदायिक सेवा अत्यन्त श्लाघनीय है।

इस ग्रन्थ को पूज्यपाद् आचार्य वर्य्य गो.ति. श्री १०८ श्रीइन्द्रदमन जी (श्री राकेश जी) महाराज श्री की आज्ञा से विद्या विभाग मन्दिर मण्डल नाथद्वारा ने प्रकाशित किया है। श्रीयमुनाजी के अनन्य अनुरागी वैष्णव, विद्वानों से सानुनय अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थ रत्न का एक बार अवश्य ही पठनावलोकन करें। अशुद्धि संशोधन में पूर्ण ध्यान रखते हुए भी -

जीवस्वभावतो दोषाः सम्भवन्त्येव कुत्रचित्।

सद्गुण ग्राहिणः सन्तो नैव गृह्णन्तितान् पुनः।।

निवेदक :-

त्रिपाठी यदुनन्दन श्रीनारायणजी शास्त्री

अध्यक्ष

विद्या विभाग मन्दिर मण्डल

नाथद्वारा (राज.)
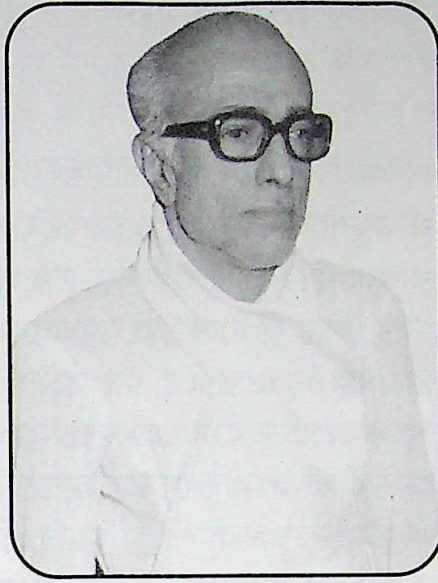
नि. ली. गो. तिलकायित श्री १०८ श्री गोविंदलाल जी महाराज श्री

समर्पणम्

प्रह्लादोचितनिष्ठया शुचितया सीतोचितानर्घया -

संतप्तोऽप्यनिशं त्रिदुःखदहनैर्ज्वालोग्रकालोपमैः।

तिष्ठत्यव्यय एव यो रसपति धैर्यं स्वयं मूर्तिमत् -

साक्षाद् दिव्यहुताश एव जयताद् गोविंदपादाभिधः।।

श्रीमद् - वल्लभ - कुलतिलक अनंतश्रीविभूषित
गो. तिलकायित श्री १०८ श्री गोविंदलाल जी महाराज श्री को

प्रणाम पुरःसर

प्रस्तुत ग्रंथ - रत्न
सानुनय
समर्पित

तत्रभवद्वशंवद
आर - कलाधर भट्ट

।। श्री हरि: ।।

प्रारंभ

अखण्ड-भूमंडलाचार्य श्रीमद्-वल्लभाचार्य-प्रधान-पीठाधीश्वर अनंत-श्रीविभूषित गो. तिलकायित श्री गोवंदलालजी महाराजश्रीने '**श्रीयमुनाष्टकम्**' की व्याख्या करने का मुझे आदेश दिया और इस आदेशको, मैंने, अपने स्वाभाविक भावना-भावित महोत्साहपूर्वक, स्वीकार किया। स्वीकार तो कर लिया, लेकिन मैंने अपने जीवन काल में, जब, प्रथम ही प्रथम '**श्री यमुनाष्टक**' देखा तो मुझे लगा कि मैं कुछ नहीं समझ सका, और जितनी बार यह भाव आया उतनी ही बार इस ग्रंथ-रत्न के पारायण किये। इस तरह से आचरित असकृत् अभ्यास रूप मंथन का परिणाम ही यह प्रस्तुत व्याख्या है। यह हिन्दी-व्याख्या, '**श्री यमुनाष्टक**' पर आलेखित पांचों विवृतियों की संदर्भानुसार सज्जीकृत पंक्तियों का अनुवाद मात्र है, साथ ही विवृतियों के अध्ययन से अंत:-स्फुरित नूतन भावों की अभिव्यक्ति भी है - अर्थात् विवृति-पंचक के सार समुदाय से यह पंचामृत रूप व्याख्या-रस निष्पन्न हुआ है। मेरा यह व्यक्तिगत अभिप्राय तब प्रमाणित हुआ, जब, पूज्य-चरण श्री महाराजश्रीने, इस व्याख्या को, प्राय: एक ही उपस्थिति में, आद्योपांत सुनकर, अपनी अंत:संतोषाभिव्यक्ति रूप में, मुझे उत्तमोत्तम साधुवाद से पुरस्कृत किया। आपश्री के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतार्थता प्रकाशित करता हूँ।

काव्य रमणीयार्थ का प्रतिपादक है। साक्षात् रमणीयत्व ही श्रीयमुनाष्टक का प्रतिपाद्य विषय है। यथास्थित-रूप-निरूपण को स्तुति कहते हैं, इस आशय में वेद-मंत्र स्तुति है। यहां 'स्तुति' इसी अर्थ में प्रयुक्त हुई है, लौकिक अर्थ में नहीं।

अत:, 'श्रीयमुनाष्टकम्' मंत्र है। श्रीमद्-आचार्य-चरण इसके ऋषि है। पृथ्वी छंद है। हरि-प्रिया कालिन्दी इसकी देवता है। '**रसो वै स:**' बीज है। प्रभु-संबंध संपादन में उपस्थित अन्तरायके निवारक श्रीमुररिपुकी प्रीति में विनियोग है। लीला-सामयिक प्रभु-श्रम-जलाणुओं से संगम ही सिद्धि है।

श्रीमद्-आचार्य-चरण ने अपने संप्रदाय के सिद्धान्तों को स्पष्ट समझाने के लिये कुल षोडश ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रंथों के अध्ययन से आपश्री द्वारा प्रतिपादित पुष्टि-मार्गोक्त-भक्ति-योग का, तथा उसके दार्शनिक-स्वरूप का स्पष्ट बोध हो सकता है। षोडश ग्रंथों में '**श्री यमुनाष्टकम्**' आपश्री की सर्व प्रथम रचना है। इस लिये यह स्तोत्रशिरोमणि, उपरोक्त ग्रंथों के प्रारंभ का समुपयुक्त मंगलाचरण है। भगवद्-रतिके अमृत-द्रव से परिपूर्ण मंगलमय-स्वर्ण-कुंभ की स्थापना रूप है।

श्रीमद्-आचार्य-चरण ने विविध जीवों का विवेचन किया है-पुष्टि-जीव, मर्यादा-जीव तथा प्रवाही-जीव। पुष्टि-जीव, भगवदीय कहे जाते हैं, और इनकी सृष्टि, भगवदीय-सृष्टि। श्रीयमुनाष्टक में, ज्ञान-मार्गोक्त सर्वज्ञता अथवा मोक्ष के स्वरूप का विवेचन नहीं है, इस में योग-सूत्रोक्त सिद्धियों की चर्चा नहीं की गयी है, इसमें कर्म-मार्गोक्त धर्म, अर्थ और काम का निरूपण नहीं हुआ है। इसमें उस

भगवदीय-सृष्टि का वर्णन मिलता है जो अपने में यह सब कुछ समाकर सभी से विरल एवं विलक्षण है। इस सृष्टि के जीवों का एकमात्र धर्म है-हरि का स्मरण और भजन, अर्थ है-हरि की प्रीतिः, काम है-हरि दर्शन की लालसा, मोक्ष है-हरिके परम-आनंदमय स्वरूप की अनुभूति। भगवदीयत्व ही सर्व पुरुषार्थो की उपलब्धि रूप है-'**भगवदीयत्वेन परिसमाप्तसर्वार्थाः।**'

श्रीयमुना इसी भगवदीय सृष्टि की सर्वेश्वरी है। प्रभु को यह सृष्टि अत्यन्त प्रिय है-'**नाहमात्मनमाशासे मद्-भक्तैः साधुभिर्विना**'। प्रभु की इसी प्रिय-सृष्टि को, अपने भक्तानुगुणत्व-धर्म से श्रीयमुना संपूर्णतः सम्पन्न रखती है। प्रभु के प्रियत्व की संपादिका श्रीयमुना, उनकी अंतरंग-'**प्रि-वयस्या**' है। निःसाधन-फलात्मिका होने के कारण, वह, भगवदीय-समाज की भी परम-स्नेहास्पदा है। प्रस्तुत स्तोत्र में, इसी '**उभयोपकारिणी**' श्री यमुनाकी नाम-रूपमयी अनुभूति करायी गयी है। यह अनुभूति, तत्सुलभ रसमयता, तनु-नवत्व की उपलब्धि के उपरांत ही संपाद्य हो सकती है। लौकिक-द्वारा अलौकिक का ग्रहण असंभव है। तथापि, जब तक देह में अलौकिकत्त्व का आधान न हुआ हो, तब तक इस स्तोत्र के पारायण-परायण को 'दुरित अर्थात् दोष क्षय' का मुक्त आशीर्वाद श्रीमद्-आचार्य-चरण ने दिया है। भगवदीय सृष्टि में, अर्थात् पुष्टि-सृष्टि में निर्दोष-जीव ही अंगीकृत होते हैं। अतः इसमें प्रवेशाधिकार '**श्रीयमुनाष्टक**' द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

'**श्रीयमुनाष्टक**' के पांच भाष्यकार है। ये सभी मद्-आचार्य-चरण के वंशज एवं उद्भट विद्वान् थे। स्वनामधन्य श्रीविट्ठलेशजी ने 'श्रीयमुनाष्टक' को अपनी उत्तमोत्तम 'विवृति' से विभूषित किया है। आपश्री ने षष्ठ श्लोक-पर्यंत ही विवृति लिखी है। अंतिम श्लोक-त्रय की विवृति को उनके चतुर्थ-पुत्र श्री गोकुलनाथजी ने लिखकर निवेदित की थी। श्री हरिरायजी, श्री पुरुषोतमजी तथा श्री द्वारकेशजी-इस विद्वत्-त्रयी ने, श्रीमत्प्रभुचरण तथा श्री गोकुलनाथजी की विवृत्ति ऊपर यथाक्रम अपनी टिप्पणी, विवृति-विवरण तथा विवृति-टिप्पण लिखे हैं। तदुपरांत, श्रीमत्प्रभुचरण एवं श्री हरिरायजी द्वारा स्वतंत्रतया विरचित क्रमशः '**श्रीयमुनाष्टपदी**' तथा '**श्रीयमुना विज्ञप्ति**' स्तोत्र भी उपलब्ध है।

इसके अतिरिक्त, संस्कृत वाङमय में, श्रीयमुना के अनेकों स्तोत्र हैं जिनमें आद्य-शंकराचार्य तथा रूपगोस्वामी विरचित स्तोत्र विशेष प्रसिद्ध हैं। इन स्तोत्रों में श्रीयमुना के आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप का ही प्रायः अधिक परिचय दिया गया है। श्रीमद्-आचार्य चरण के 'श्रीयमुनाष्टक' में केवल आधिदैविक-स्वरूपा श्रीयमुना ही अवतरित हुयी है। इसमें श्रीयमुना अपने त्रिभुवनाद्भुत-सौंदर्य से प्रकट है-अपने परम उपकारकत्त्व एवं कृपालुत्त्व धर्मो सहित प्रत्येक श्लोक मानों श्रीयमुना की स-चेतन उपस्थिति है। श्रीमद्-आचार्य चरण, ब्रह्म-वाद के एकांत प्रतिपादक थे-'**सर्व खल्विदं ब्रह्म**'-'**जीवजडात्मकं सर्वमहमेव**'-'**अयं मुख्यो ब्रह्मवादः**'-'यह सब कुछ साक्षात् ब्रह्म है-जीवजड़ात्मक सब कुछ मैं ही हूँ'-यह ज्ञान मुख्य ब्रह्मवाद है। अतः श्रीमद्-आचार्य-चरण को, जल-प्रवाहमयी आधिभौतिक-स्वरूपा यमुना की प्रतीति होती ही-कैसे ? उनके लिये यह तो श्रीमुकुन्दप्रिया, द्रवीभूत-

रसात्मिका साक्षात् सूर्य-पुत्री श्रीयमुना ही है। प्रस्तुत संपूर्ण अष्टक को गहनतापूर्वक विचारने से यह स्पष्ट प्रतीत हो जायेगा कि इसमें कहीं भी श्रीयमुना के नदीत्व-भौतिक-स्वरूप-सूचक पदावलि का प्रयोग ही नहीं हुआ!!! पुलिन के निकट जो सिकता-कण चकचकित हो रहे हैं-वह केवल लोक-प्रतीति है-वस्तुतः वह मुक्ता है, लहरें, वस्तुतः भुजायें है, तट, वस्तुतः नितंब हैं। एक स्थल पर **'पयःपानतः'** शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु वहाँ **पयः** शब्द का अर्थ दूध है, पानी नहीं, इसी लिये श्रीयमुना का पयःपान मुख से किया जाता है, अंजलि से नहीं। अंजलि से पानी पीया जाता है, दूध नहीं। **'श्रीयमुनाष्टकम्'** में नदीस्वरूपा श्री यमुनाका वर्णन नहीं है, किन्तु मुकुंद-रति-वर्धिनी आधिदैविक-स्वरूपा श्रीयमुना का संकीर्तन है। श्री यमुना के इसी आधिदैविक स्वरूप का स-प्रमाण प्रतिपादन श्री पुरुषोत्तमजी ने अपनी 'विवृति-विवरण' में पांडित्योचित शैली से किया है।

इस स्तोत्र में तो **'सघोष-गतिदंतुरा'** श्रीयमुना का संकीर्तन हुआ है, अभिसारपरायणा, रणन्-मंजीर-मंजुला श्री यमुना का, जो रोमांचित है, क्वणत्-केयूर-कंकणा, सुश्रोणी-तटा श्री यमुना का, जिसे गमन-मात्र की ही स्फूर्ति है, दोलाधिरोहण की प्रतीति ही नहीं !!! व्रज-सुंदरी-वृंद सहित प्रभु के रति-श्रम-रस से ओत-प्रोत श्रीयमुना का, जो स्व-सेवक को 'तनु-नवत्व' से सम्पन्न करती है और जो सकल-सिद्धियों की प्रदात्री है।

विनीत

आर. कलाधर भट्ट

।। श्री कृष्ण रूपायै नमः ।।

।। श्री हरिः ।।

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारि-पद-पंकज-स्फुरदमन्दरेणूत्कटाम् ।।
तटस्थ-नव-कानन-प्रकट-मोद-पुष्पाम्बुना
सुरासुर-सुपूजित-स्मरपितुः, श्रियं विभ्रतीम् ।।1 ।।

(१)

सकल सिद्धियों की निधि यमुने ! करता नमन तुमें प्रमुदित।
जो, मुररिपुके चरण-कमल की, प्रचुर-रेणु से आध्यायित ।।
सह-जन-सुरभित-सुमन-सलिल से, सुर-असुरों से सम्मानित-
-काम-पिता की श्री अनंत से, अंग अंग जिसका भावित ।।१ ।।

अनुवाद :- सकल सिद्धियों को देनेवाली, श्रीमुरारिके चरण-कमल की, सेवोपयोगी देहादि के संपादन में तत्पर रेणु-प्रचुरता से उत्कट (उन्मद), तट-समीप-नूतन-वन-राजि के प्रमुदित पुष्पों सहित सुगंधित-जल द्वारा सुरासुर से सुपूजित-अर्थात्, सर्वात्म-भाव तथा काम-भाव युत उभय-विध स्वामिनी-यूथ द्वारा पुष्पाभरणों से समलंकृत-प्रद्युम्न के पिता श्रीकृष्ण की शोभा को धारण किये हुये श्रीयमुना को, मैं हर्षपूर्वक नमन करता हूँ ।।१ ।।

व्याख्याः- अपने रसात्मक स्वरूप को एवं तदनुरूप-लीला को प्रत्यक्ष प्रकट करने के लिये ही, रसात्मा श्रीकृष्ण भूतल पर अवतीर्ण हुये, एवं तदर्थ सर्वात्म-भावमयी गोपाङ्गनाओं के साथ आपने रमण-किया। अपने अपने माहात्म्य की अथवा प्रभुत्व की संपूर्ण-विस्मृति-पूर्वक पारस्परिक एकांत समर्पण में ही 'रस' की निष्पत्ति होती है। इसीलिये, भगवान् अपनी निखिल-चेष्टाओं सहित गोपाङ्गनाओं के लिये ही समर्पित हो गये-यहां तक कि इनके अतिरिक्त, अन्य सभी प्रकार की प्रतीति अथवा स्फूर्ति से उन्हें शून्य होना पड़ा-अपने ऐश्वर्यादि धर्मो की प्रतीति से भी!!! अधीनता, ऐश्वर्य की विरोधी है। ऐश्वर्य और अधीनत्व यह दोनों अवस्थायें सह-स्थिति नहीं कर सकती। अतः, अपने आपको ऐश्वर्य आदि ईश्वरीय-धर्मो की स्फूर्ति से रहित कर देने के लिये, अपने अष्ट-विध ऐश्वर्यो को और इनके द्वारा संपादनीय कार्य-कलाप को, भगवान् ने श्रीयमुनाको अर्पण कर दिये, जिससे, वह स्वयं तो अन्य सभी स्फूर्ति एवं कृति से स्वतंत्र होकर, गोपीजन की संपूर्ण अधीनता में अनन्यतया 'रस' के स्वरूप को अर्थात् अपने स्वरूपानंद को प्रकट करें, तथा श्रीयमुना, भगवद्-प्रदत्त ऐश्वर्यो द्वारा, भगवद्-लीला-सृष्टि से संबंधित रस की अधिकाधिक अभिव्यक्ति में उपकारक, संपूर्ण साहित्य, समाज तथा सामग्री के सांगोपांग संपादन में तत्पर रहे।

भगवद्-प्रदत्त श्रीयमुना के अष्ट-विध-ऐश्वर्य इस तरह है 1. सकल-सिद्धियों के प्रदान करने का. 2. भगवद्-भाव के संवर्धन का 3. भगवान् से संबंध साधने में जो प्रतिबंध उपस्थित हों, उनको दूर करके, भगवद्-अनुभूति के योग्य शुद्धि संपादनार्थ, भूतल को पावन करने का 4. अनायास भगवान् से संबंध करा देने का 5. भगवान् को जो भक्त प्रिय हो उसके कलि-सुलभ दोषों को दूर करने का 6. भगवदीय के उत्कर्ष की अभिवृद्धि करने का 7. भक्त में भगवद्-प्रीति के संपादन का 8. देह को नूतन बनाने का।

श्रीयमुना को **'सकल सिद्धि हेतुम्'** कहा है, अर्थात् स्वयं श्रीयमुना में भी अष्ट-विध सिद्धियां है- जिसकी अनुभूति वह यथाधिकार लीला-सृष्टि के जीवों को ही कराती है तथा अपने आधुनिक सेवकों को तो, इस स्तोत्र के अंतिम श्लोकोक्त दुरित-क्षय रूप अथवा स्वभाव पर विजय-प्राप्ति रूप फल-दान द्वारा उपकृत करती है। उपरोक्त पंक्ति-गत 'सकल' से यह भी अभिप्राय है कि श्रीयमुना भक्त को, उसके अनुगामी के रूप में, अंश-कला-सहित श्री पुरुषोत्तम की प्राप्ति करा देती है। यह प्राप्ति ही महासिद्धि है। अपनी सभी सिद्धियों के प्रदान कर देने की शक्ति भी एक ऐश्वर्य है।

इन सिद्धियों के प्रभाव से श्रीयमुना, भगवान् की आवरण-अनाच्छन्न सेवा के योग्य देह की प्राप्ति कराती है। लीला के प्रत्यक्ष दर्शन के साथ, लीला-रस के अनुभव की क्षमता तथा सर्वत्र भगवद्-भाव-मयता प्रदान करती है। श्रीयमुना भक्त की देह को भगवदावेश से संपन्न बनाती है जिसे भगवदाविष्ट देह-सिद्धि कहते हैं। इस अवस्था में, भगवद्-विरह से संतप्त भक्त की देह में आविर्भूत-भगवान्, प्रतिमा में आहूत-देवता की तरह, अपनी स्थिति कर लेते हैं। श्री यमुना की कृपा से भक्त, अन्तर्मुख-नेत्र द्वारा, अपने भीतर आर्विर्भूत-लीला का अवलोकन तथा भावात्मक-स्वरूप से भगवद्-रस का अनुभव करता है। श्रीयमुना स्व-सेवक को, भगवद्-विरह-सुलभ सर्वात्म-भाव का भी दान करती है।

उपरोक्त अष्ट-विध ऐश्वर्य तथा सिद्धियां, भक्ति-मार्गीय सामर्थ्य विशेष मानी जाती हैं। इनकी यह परिभाषा पुष्टि मार्गीय है, तथा भगवान् की लीला सृष्टि से संबंधित जीव-विशेष में ही यथाधिकार प्रकट होती है। ये सिद्धियां, भागवतोक्त अणिमादि से विलक्षण है, क्योंकि अणिमादि-अष्टकसे संपन्न सनकादि, श्रीयमुनोक्त अष्ट-सिद्धियां देने में सर्वथा असमर्थ है। सनकादि लीला-सृष्टि के जीव नहीं है अतः उनमें उपरोक्त सिद्धियों का अभाव ही है।

श्रीयमुनाष्टक में आठ श्लोक हैं। प्रत्येक श्लोक द्वारा, श्रीयमुना के भगवद्-प्रदत्त यथाक्रम आठों ऐश्वर्यों की अभिव्यंजना की गयी है। इस तरह यहाँ, ऐश्वर्य-संख्या तथा श्लोक-संख्या में साम्य द्वारा, भगवान् तथा श्रीयमुना की अभिन्नता का निर्देश किया गया है। श्री यमुनाष्टक के विद्वान्-टीकाकार, ऐश्वर्यो की संख्या में एकमत है, किन्तु, एक दो ऐश्वर्यो की परिभाषा में तथा उनकी श्लोक द्वारा यथाक्रम-अभिव्यक्ति में, असम्मत, सभी टीकाकार उद्भट विद्वान् तो है ही, भगवद्-संबंधी भी हैं। उन्होंने जो कुछ भी अपनी समझ तथा अनुभूति से लिखा वह सब निःसंदिग्ध एवं यथोचित है।

भगवान् ने अपने ऐश्वर्यो की एकांत अधिकारिणी रूप में श्रीयमुना को ही क्यों पसंद किया ? इसके कतिपय कारण है। भगवान् यदि ईश्वर है, तो श्रीयमुना साक्षात् ईश्वरी हैं। यदि ईश्वरी न होती तो सकल सिद्धियों की निमित्तता का उनमें अभाव होता, वह सकल सिद्धि-दात्री नहीं कहीं जाती। वस्तुतः देखा जाये तो भगवान् की विविध-लीलाओं के रस की सांगोपांग चरम-अभिव्यक्ति में परम-उपयोगिनी अथवा उपकारक यदि कोई है तो वह श्रीयमुना। गोपीजन तथा भगवान की, रमणैक अभिलाषा वाले इस युगल-दल की, एकमात्र संगम-स्थली श्रीयमुना ही है। देवादि के प्रति रति को 'भाव' कहते हैं। इसी भाव का उद्दीपन करने वाली अशेष-सामग्री के साथ, व्रज के चारों और, चौरासी कोस के परिसर-पर्यंत, श्रीयमुना उपस्थित है-कुसुमित-कदंब कुंज से सुरभित गिरिराज की सुरम्य कंदरायें, पुष्प-स्तबकों से भारावनत झूमती हुई लतिकाओं को, अपनी नव-किसलयान्वित अतएव पुलकायमान-शाखा-रूप भुजाओं से आलिंगन करते हुए विटपियों के सघन-निकुंज, पंकज-पराग पान से उन्मत्त मधुप-कुल के कोलाहल से तथा शुक, मयूर, हंस, सारस, कोकिला समाज के मधुर निनादसे संगीतमय दिशायें, मल्लिका-वनराजि के परिमल से आप्यायित अतएव मंथर-गति मारुत की मादकता से तरंगायित सरितायें, गोधन तथा मृग-कुल से अभ्यासित सुदूर-विस्तृत दूर्वादल का श्यामल-प्रांगण, कलानिधि के ज्योत्स्नोज्वल-उत्संग में ओतप्रोत पुलकित-यामिनी, तारिका-मंडल से विमंडित नीलम का सुविशद-वितान, सिकतामय चकचकित मुक्ता-फल-जटित-पुलिन का रमणीय रंगमंच-संक्षेप में, यह उक्त अनुक्त सब, श्रीयमुना के निरतिशय-सौंदर्य की एक ऐसी स्वसंपूर्ण-सम्पन्नता है जो निरंतर आलंबन, उद्दीपन, संचारि आदि भावों द्वारा अभिव्यक्त स्थायी-भाव रूप 'कृष्ण-रति' को प्रतिक्षण नूतनता अर्पण करती रहती हैं। इसीलिये श्री यमुना **'शृंगार-प्रकरा'** अर्थात् रति-उद्दीपक-शृंगार-सामग्री से समन्वित कही गयी हैं। ऐसी अलौकिक सम्पन्नता वाली तथा रस-मय-साहित्य की संपादिका, भगवान् की अनेक-विध लीलाओं में क्यों न उपयोगिनी होगी ? प्रियत्व की साधिका ही अन्तरंग होती है, अंतरंग ही सर्वस्व की स्वामिनी कही गयी है। श्रीमत्प्रभु-चरणने श्री यमुना को जो, **'विविध-लीलोपयोगिनी'** कहा, वह इनके आधि दैविक-स्वरूप के लिये तो है ही, तदुपरांत, यह विशेषण, आपके आधिभौतिक स्वरूप में भी सार्थक है - जो प्रत्यक्ष है। श्री यमुना, भक्त के प्रियत्व की भी, संपादिका है। भक्त को, भगवत्.-संमुख करके, उसका, प्रभु के साथ-रमण संपादन करने की, अपनी सामर्थ्य के कारण आपका नाम 'यमुना' है-**यमु उपरमे-यमयति, जीवान् भगवत्-समीपे रमयति।''** इसी कारण श्रीयमुना-**'उभय-संबंधिनी'** कहलायी।

श्री यमुना के भगवद्-ऐश्वर्य-धारिणी होने का एक दूसरा हेतु और भी है। भगवान् के अंतरंग-मनोरथों की परिपूर्ति में निरंतर सहयोग देने वाली श्रीयमुना, उनको अत्यन्त प्रिय है। वह कृष्ण-प्रीति-प्रसाधिनी हैं। श्रीकृष्ण की 'नित्य प्रिया' है। रमण में इनका स्थान सर्वत्र एवं सर्वदा है। श्रीकृष्ण, गोपीजन के साथ, केवल व्रज में-तथा लक्ष्मी के साथ, वैकुंठ में ही रमण करते हैं। किन्तु, श्रीयमुना के साथ निरंतर-क्रीड़ा-रत हैं। प्रियता को प्रतिक्षण उद्‌बुद्ध करने वाला तत्त्व ही नित्य-प्रिय कहलाता है, और यही

रमणीयता का स्वरूप है। **क्षणेक्षणे यन्नावता मुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः''**। नित्य-प्रिय को ही सर्वस्व समर्पित किया जाता है। तदुपरांत, श्रीयमुना और भगवान् दोनों सजातीय-धर्म वाले हैं, दोनों समान-हेतुओं को लेकर अवतीर्ण हुये हैं, और स्वरूप से भी अभिन्न हैं। दोनों स-जल-मेघ समान श्याम-वपु हैं, दोनों ही रसात्मा है-श्रीकृष्ण **'रसो वैसः'** है। श्रीयमुना भी स्वयं वह रस-तत्त्व है जिसे, उपनिषद् ने सत्-चित्-आनन्दमय **'रस-ब्रह्म'** कहा है - **'रसो यः परमाधारः सच्चिदानंद-लक्षणः', ब्रह्मेत्युपनिषद गीतस्तदेव यमुना स्वयम्।''** श्रीकृष्ण-घनीभूत-रसात्मा हैं। सूर्य-मंडलान्तर्गत साक्षात् नारायण के आनन्द-मय हृदय से आर्विर्भूत श्रीयमुना-द्रवीभूत-रसात्मिका है-यह इतना भेद, रस-सिद्धान्त के अनुसार, अभेद ही माना जायेगा।

'मुरारिपद-पंकज-स्फुरदमन्दरेणु' - भक्त तथा भगवान्-इन दोनों को, परस्पर संमिलन की एक सहज, किन्तु, उत्कट-अभिलाषा रहती है। उभय-दल की इस अभिलाषा-पूर्ति में, 'जल' को महान अन्तराय रूप माना गया है। जल के इस पार तथा उस पार, प्रतीक्षा परायण प्रेमी-जन जो परस्पर मिल नहीं पाते उसमें जल ही तो प्रतिबंधक है **'पारस्थित-तदप्राप्तेः'**, किन्तु, स्वयं जल का इसमें कोई दोष नहीं। संतरणादि उपायों द्वारा जल को तो सहायक बनाया जा सकता है। वास्तव में, मुर नामक दैत्य के संबंध से, जल में प्रतिबंध करने का यह दोष आया-**'दैत्यःपंचशिरा जलात्।'** इसी मुर-दैत्य की सहायता से, नरकासुरने, श्रीकृष्ण में अनन्यभाव वाली षोड्शसहस्र राजकन्याओं को बंदी बनाया था। भगवान् का यह स्वभाव है कि वह भक्त के, अपनी प्राप्ति आने वाले प्रतिबंध अथवा विलम्ब को जरा भी सहन नहीं कर सकते। अतः आपने जल के दोष रूप में मुर का निकन्दन कर के इस कन्याओं को अंगीकार किया अतः भागवद प्राप्ति में प्रतिबंध रूप जो दोष, जल में, माना गया है-वह साक्षात् मुर-दैत्य ही तो है। जल के दोष रूप मुर की निवृत्ति से भगवद्-प्राप्ति स्वतः सिद्ध है। मुर-विनाशक श्रीकृष्ण **'मुरारि'** कहलाते है। श्रीयमुना इन्ही मुरारि के चरण-कमल की रेणु-प्रचुरता से सम्पन्न है। अतः श्रीयमुना में **'दोष'** संभावना की गंध ही कहा? मुरारि के चरण-कमल की रेणु से परिपुष्ट-कलेवरा श्रीयमुना, भगवद्-प्राप्ति में उपस्थित प्रतिबंध तथा विलंब, इन उभय दोषों को निवृत्त करने में यदि समर्थ है तो उसमें आश्चर्य ही क्या? श्रीयमुना में मार्ग-दातृत्त्व-शक्ति सहज है। शिशु कृष्ण को लेजाते समय, वासुदेव को, श्रीयमुना ने मार्ग दिया था, न अन्तराय उपस्थित किया, न ही विलंब उत्पन्न किया।

तदुपरांत, इस रेणु की एक और भी चमत्कृति है। श्रीमुरारि के चरण-कमल की रेणु में वृज-सुंदरी-वृंद के चरणों की रेणु भी सम्मिलित है। अतः, उभय-दल के पदारविदों की रेणु-समुच्चय में, देह और जीव को निखिल-दोष-जाल से मुक्त कर देने का अचिंत्य प्रभाव है। पातक-पारावार के परिशोषण में, भगवद्-चरण-रेणु की महिमा तो सुविदित है ही **'भगवद्-चरणारविंदरेणवो भगवदीयदेह-संपादकाः'**-किन्तु, भक्त के चरण की रेणु तो स्वयं भगवान् को पावन करती है **पूयेयेत्यङग्रि रेणुभिः।''** देह तभी भगवत्-सेवा के योग्य कहा जायेगा जब वह परितः दोषों से रिक्त हो जाये, क्योंकि भगवान् निर्दुष्टको ही

अंगीकार करते है-**'निर्दुष्टं हि भगवान् गृह्णाति।'** भक्त-वृंद सहित भगवद्-चरणों की इस धूलि से सम्पन्न श्रीयमुना यदि दोष भय की निवृत्तिपूर्वक, अविलंब भगवद्-प्राप्ति करा देती है तो आश्चर्य ही कैसा? अविलंब इसलिये कि यह धूलि सेवोपयोगी शुद्धि के संपादन में निरंतर समुद्यत रहती है। **'धूलि'** की यह कर्तव्योन्मुखता **'स्फुरद्'** शब्द से स्पष्ट की गयी है। यह कर्तव्योन्मुखता अर्थात् सेवोपयोगी शुद्ध-संपादन में, धूलि की यह अचिंत्य सामर्थ्य, निरंतर है। क्योंकि, श्रीयमुना स्वयं निरंतर है। श्रीमुरारि के चरण-पंकज की धूलि तथा उनके रमणकालीन श्रम-सुलभ जल के बिन्दु-इन दो तत्त्वों ही तो श्रीयमुना है। इस का संघात अलौकिक तत्त्व-युग्म से सुसंपन्न श्रीयमुना, अपने अवतरण काल में आजतक, दोषों का परिहरण करती आ रही है। लीला-श्रम-जल से ओत-प्रोत, भगवद्-चरण-रेणु से परिपुष्ट श्रीयमुना आज भी, वैसी ही अव्यय एवं अक्षय है - 'सातों समुद्रों का भेदन करके, सूर्य मंडल से धरणी-तल पर, रहट्टवत् पुनः पुनः अपने आवागमन से, श्रीयमुना में आजभी, और अनंत तक, वही श्री-जल, वही श्री-रेणु एवं अव्यय है और रहेगी-'

''एवंभूमौ तथाऽकाशे, घटी यंत्रमिवानिशम्''

यमुनाऽस्तोदयाऽद्रिभ्यां, भ्रमन्त्याऽस्तेऽक्षयोदका।''

श्रीयमुना की इसी धूलि से अपने सर्वाङ्ग को चर्चित करने के पुण्य-क्षण की याचना श्रीमत्प्रभु-चरणने की है - **'तव-तट-गत-वालुका कदाऽहं सकल-निजाङ्ग-गता मुदा करिष्ये।'**

'मुरारि पद-पंकज-स्फुरदमन्द-रेणूत्कटाम्-' इस पद में 'अमंद' तथा 'उत्कट' का अर्थ, क्रमशः 'अनल्प' एवं जलापेक्षया-'अधिक' ऐसाकिया गया है। यहाँ 'अमंद' में जो व्यंजना-ध्वनि-है उससे संपूर्ण पद रसमय-बन गया है अर्थात् श्रीयमुना में अकेले मुरारि के ही चरण की रेणु नहीं है-साथ में, वृज-सुंदरी-वृंद के चरणों की रेणु-राशियाँ भी, उसमें सम्मिलित है, तभी तो रेणु की अधिकता का कथन, 'अमंद' शब्द का प्रयोग, सार्थक होगा!!! तदुपरांत, 'अमंद' में एक ध्वनि और भी है, श्री यमुना में उपरोक्त रेणु, प्रचुर-मात्रा में है अर्थात् जलापेक्षया रेणु की-उत्कटता-अधिकता है। इसके द्वारा यह संकेत किया गया है कि जल-केलि के समय जलाधिक्य के अभाव में, न डूबने का भय, न मकरादि का भय। अतः, जलापेक्षया अधिक-रेणु से समन्वित श्रीयमुना, जल-केलि के लिये निर्भय **'कृष्ण-क्रीडाश्रया'** है।

उपरोक्त पद में, यदि 'अमंद'-अर्थात् 'अनल्प'- से ही 'अधिकता' का बोध हो जाता है तो फिर **'उत्कट'** का अर्थ 'अधिक' न करके 'उन्मद' किया जाना चाहिये-**'उत्कट स्तीव्रमत्तयोः'** इति हैमः अर्थात् **'उत्कट'** शब्द तीव्र और मत्त इन दोनों अर्थो में व्ययहृत होता है। 'गर्व' के अर्थ में भी 'उत्कट' का

प्रयोग मिलता है। 'श्रीकृष्ण के चरण-पंकज की पराग-प्रचुरता से मदान्वित, अथवा अपने स्वामी श्रीकृष्ण-चरण-कमल की प्रचुर-धूलि-संपन्नता रूप सौभाग्य-संपदा से गर्वान्वित-श्रीयमुना' यह अर्थ भी संभव एवं युक्ति-युक्त है। यहाँ उत्कट इन दोनों ही अभिप्रायों में सार्थक है।

श्रीयमुना में '**सकल-सिद्धि-दातृत्व**' का जो ऐश्वर्य है उसके दो सहकारी धर्म माने गये हैं एक-'**दोष-निवर्तकत्व**' धर्म तथा दूसरा '**भाव-जनकत्व**' धर्म। श्रीयमुना के इन दोनों धर्मो का निर्देश, उनके यथाक्रम इन दोनों विशेषणों द्वारा किया गया है। **मुरारिपदपंकज-स्फुरदमन्द-रेणूत्कटाम्** तथा 2-**सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं-विभ्रतीम्-(एताभ्यां विशेषणाभ्यां यद् दोषनिवतर्कत्वं भावजनकत्वं चोक्तं तत्पूर्व-विशेषणोक्तसिद्धि-दातृत्व-सहकारित्वाय इति-श्री. पु.)** अपने दोष-निवर्तकत्व-धर्म के कारण, 'आप कालिन्दी' अर्थात् 'कलेर्दोषस्य खंडन-कर्त्री' कहलाती है तथा अपने भाव जनकत्व धर्म के कारण भी आप यमुना '**यमु उपरमे जीवान् भगवत् समीपे रमयति-**' कहलाती है। श्रीयमुना के दोष निवर्तक-धर्म का निरूपण इसके पूर्व हो चुका है-उनके भाव-जनक-धर्म का विवेचन इस प्रकार है।

सुरासुरसुपूजितस्मर-पितुःश्रियं विभ्रतीम्ः- श्री यमुना के भाव-जनकत्व-धर्म निरूपण से पहिले, यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि भाव, काम तथा रति, यहां यह तीनों शब्द, एक दूसरे के पर्यायरूप में प्रयुक्त हुये है। तदुपरांत, यहां भाव, काम तथारति से वह अर्थ अभिप्रेत नहीं है जिस अर्थ में इनका लौकिक प्रयोग किया जाता है। भाव, काम तथा रति, भगवान् के उस स्वरूप के बोधक है जो '**आनन्दात्मक**' है। अतः '**आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्**' '**रसो वै सः**' '**सोऽश्नुते सर्वान् कामान्**' आदि औपनिषदिक मंत्रों में आनन्द, रस, काम आदि जिस अर्थ में व्यवहृत होते हैं वही अर्थ यहां उपरोक्त तीनों शब्दों का समझना चाहिये। रसात्मा भगवान् तथा भावात्मक-भगवान्-इन दोनों पदों में रस तथा भाव समानार्थक है। भगवदीयका भाव निर्विशेष '**काम**' है-अतः, भगवद्-स्वरूप है। प्राकृत-मानवी का भाव, सविशेष काम है अतः विषय-वासना स्वरूप है। अस्तु,

'**सुरासुरसुपजित**'-यहां सुर और असुर का अर्थ इन्द्रादि देव एवं प्रह्लाद आदि दानव नहीं है। सुर और असुर से, भगवान् की द्विविध-स्वामिनीयों का निर्देश किया गया है। सर्वात्म-भाववाली सात्विक होने से 'सुर' कोटी की है, मान-भाववाली, तामसिक अतएव 'असुर' कक्षा की है। इसी तरह '**स्मरपितुः**' पद में '**स्मर**' का अर्थ '**स्मरण**' भी है '**स्मरणं स्मरः।**' 'काम' के अर्थ में '**स्मर**' शब्द प्रसिद्ध है ही। '**पितृ**' का अर्थ '**जनक**'-पिता है इस तरह 'स्मरपितुः' पद, स्मृति-जनक तथा काम-जनक, इन दोनों अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। श्रीयमुना में यह दोनों धर्म है-वह प्रभु-स्मारक भी है और भाव-जनक भी। भगवान् स्वयं भावात्मा अतएव भाव के अर्थात् काम के जनक है। साक्षात् '**प्रद्युम्न**' पिता है। भगवान् ने

स्वयं अपने इस '**काम-जनकत्व**' धर्म का निर्देश किया है, 'मेरा, निष्काम भाव से स्मरण करने वाला सकाम हो जाता है-'**यं मां स्मृत्वा निष्कामः सकामो भवति**'' अर्थात् निष्काम-भाव से स्मरण करने वाले अपने भक्तों में, भगवान् स्वविषयक-भाव (काम) उत्पन्न करते है। काम, भगवद्-विषयक है अतः भगवत्-स्मृति, काम का ही उद्‌बोधन करेगी। भगवान् स्वयं 'भगवद्-विषयक है अतः भगवत्-स्मृति, काम का ही उद्‌बोधन करेगी। भगवान् स्वयं 'भावजनक है, तदुपरांत, सर्वात्मभाव तथा मान-भाववाली गोपीजनों द्वारा पुष्पाभरणों से समलंकृत होने के कारण, उनका स्वरूप '**काम-भाव को**''' और भी अधिक उद्‌बुद्ध करने वाला हो गया है। स्वयं काम-जनक, फिर उभय-विध-प्रियतमाओं से अभ्यर्चित ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण का, त्रैलोक्य के सौभाग्य-चिन्ह रूप जो निरतिशय सौन्दर्य है, जिसके साक्षात्कार मात्र से पशु, पक्षि, वृक्ष आदि भी रोमांचित हो जाते हैं, वही सौन्दर्य श्रीयमुना में अङ्गत्व को प्राप्त हुआ है। '**त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्य रुपं, यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रत्**' ऐसी रमणीयतामयी, भगवत्-श्री-धारिणी श्रीयमुना के विपुल-श्यामल-कलेवर के दर्शन मात्र से काम-जनक भगवान् का स्मरण हो आना नितांत सहज है।

तदुपरांत, सदृश के दर्शन से, उससे सादृश्य रखने वाले की स्मृति सहज ही आ जाती है। इतना ही नहीं, जिसका जिस वस्तु से निरंतर सहवास रहता है उस वस्तु के दर्शन से भी, उसका स्मरण हो जाता है। भागवत में इसका उल्लेख किया गया है। भगवान् का व्रज की सरिताओं से, पर्वत-पंक्तियों से, वन-राजियों से निरंतर संपर्क रहा। आज, इनके दर्शन से बरबस भगवद्-स्मृति आ जाती है - '**सरित्‌शैलवनोद्देशो गावो वेणु-रवा इमे, पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं वत।**' जड़-वस्तुओं के दर्शन से यह अवस्था है !!! श्रीयमुना का, भगवान् से स्वरूप-सादृश्य तो है ही, निरंतर सहवास भी है। अपनी इस विशिष्ट अवस्था में, श्रीयमुना, अपने दर्शन से, भगवान् की जिस स्मृति का उद्‌बोधन करेगी, वह स्मृति, उत्कटता के अधिकाधिक संपुटवाली होगी। अनुभूति में जितनी उत्कटता, उतनी ही रसमयता। श्रीयमुना स्वयं द्रवीभूत रसात्मिका है, अतः वह, अपने व्यक्ति-गत-निरतिशय सौंदर्य-स्वरूप से, भाव का उद्‌बोधन तो करती ही है, अपने भगवत्-सदृशस्वरूप से, भाव-जनक-भगवान् की स्मृति को भी जाग्रत करती है। इस तरह, अनेक प्रकार से भाव को उद्‌बुद्ध करती हुई श्रीयमुना, स्वभक्त को रसकी गहरे में गहरी-तीव्रातितीव्र-अनुभूति से, आप्यायित करती रहती है। अपने इस विलक्षण सामर्थ्य की प्रतीति, वह केवल अपने आधिभौतिक स्वरूप द्वारा भी, स्वकृपास्पद जीव को कराती है, जो प्रत्यक्ष है। श्रीयमुना के भाव-जनकत्व तथा प्रभु-स्मारकत्व धर्म का निगूढ निर्देश '**सुरासुर**' से लेकर '**श्रियं विभ्रतीम्**' इन दोनों पदों में अत्यंत व्यंजनात्मक शैली से किया गया है। श्री यमुना के इसी धर्म का निरूपण, श्री मत्प्रभुचरण ने भी, अपने संगीत-मय पद में किया है - '**स्मारयसि गोपीवृंदपूजित-सरसमीशवपुः**'। भगवत्-स्मृति आते ही तत्संबंधित भाव का समुदय एक सहज मानसिक क्रम है।

अपने प्रभु-स्मारकत्व एवं भाव-जनकत्व धर्मो से भी श्रीयमुना, भक्त के प्रतिबंध एवं दोष का निवारण करती है। भक्त-हृदय-गत उसका '**मान-भाव**' भी एक प्रतिबंध है। इसमें भक्त को भगवद् मिलन की उत्कट अभिलाषा रहती है, परन्तु उसका '**मान-भाव**' उसे आगे नहीं बढ़ने देता। मान-भाव का विमोचन श्रीयमुना द्वारा ही संपाद्य कहा गया है। श्रीयमुना के सजल-घनघोर मेघश्याम-कलेवर का दर्शन, प्रद्युम्न-पिता श्रीकृष्ण की स्मृति कराने वाला, अतएव 'रति-भाव' का उद्दीपक है। इस प्रकार की भगवत्-स्मृति के साथ ही, भगवत् सह-पूर्वानुभव-लीला रस की बलवत् स्मृति आने पर, एक असह्य विरहताप की विकलता में, भगवत्-समागमन की तीव्र अभिलाषा से, भक्त का मान-भाव निवृत्त हो जाता है। मेघ के दर्शन से मानिनी के मान-मोचन की मानसिक अवस्था का वर्णन लोक में मिलता है -

'मेघाऽलोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः।
कण्ठाऽश्लेष-प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।।'

"एक दूसरे के बाहु पाश में आबद्ध प्रिय जन भी, मेघ दर्शन से, यदि विरह में अस्थिर चित्त हो जाते हैं, तो फिर उनकी क्या दशा होती होगी, जो सचमुच एक दूसरे से बिछुड़े-हुये बहुत दूर रहते हों!!!" मेघश्याम-स्वरूपा श्रीयमुना को देखते ही, '**यदि मानिनी-स्वामिनी**' अपने गुमान गढ़ के समर्पण पूर्वक शरणागति स्वीकार लेती हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या? श्रीयमुना स्वभावतः उभय-संबंध-संपादिनी हैं।

"**नमामि...मुदा**"- अचिंत्य माहात्म्यमयी ऐसी श्रीयमुना का प्राकट्य अेक अलभ्य उपलब्धि है। अतः श्रीमद्-आचार्य-चरण श्रीयमुना को हर्ष-पूर्वक नमन करते है **नमामि यमुना महम्**। नमन, दैन्य भाव की अभिव्यक्ति है। तदुपरांत, भगवत् साक्षात्कार के अभाव में, उनको '**नमन**' ही तो किया जा सकता है। लीला-सृष्टि में प्रवेश के अधिकार की प्राप्ति बिना, भगवत्-साक्षात्कार असंभव है। इस तरह प्रवेश रूप '**गमन**' के अभाव में, जीव केवल नमन ही कर सकता है। जीव, भगवान् का अंश, अतएव उनकी इच्छा से नियंत्रित है। अतः, भगवद्-अनुग्रह से, जब तक लीला में प्रवेश रूप विशेषाधिकार की प्राप्ति न हो, तब तक उसको, भगवान् के प्रति '**नमन**' मात्र का ही अधिकार है। श्रीमद्-आचार्य चरण, भगवान् को निरतिशय प्रिय हैं। भगवद्-प्रियता केवल दैन्य से ही संपाद्य मानी गयी है '**दैन्यं तत्तोष-साधनम्**।' 'नमन' दैन्य की परमाभिव्यति है। अतएव, भगवान् की अपने प्रति इस निरतिशय प्रियता में एक मात्र साधन रूप दैन्य-भाव को प्रकट करने के लिये तथा साथ ही श्रीयमुना की भगवान् से अभिन्नता बताने के आशय से भी, आप श्री कहते है '**नमामि यमुना-महम्**'- श्रीयमुना को में नमन करता हूँ। वस्तुतः, यह नमन श्रीयमुना के प्रति होता हुआ भी, श्रीगोकुलेश के प्रति ही है, क्योंकि श्रीयमुना के संकीर्तन में ही, भगवद्-प्रीति की सिद्धि है। श्रीयमुना, भक्त की, भगवत्-संबंध-संपादनादि-सिद्धि में, परम-उपकारक है, इसीलिये, वह सकल सिद्धियों की हेतु कही गयी है। '**सकल सिद्धिहेतुम्**'- श्रीयमुना के इस

विशेषण-द्वारा उनकी प्रस्तुत-स्तुति-योजना के गूढ-हेतु का निर्देश किया गया है-अर्थात् इस स्तोत्र संकीर्तन से प्रसन्न होकर, सकलसिद्धियों की प्रदात्री लीला-संबंधिनी श्रीयमुना, स्तोताका, लीला से अवश्य ही संबंध करायेगी। श्रीयमुना ही के प्रति '**नमन**' के आग्रह में, यह एक विशेष सूचक-ध्वनि है।

'**श्रीयमुनाष्टक**' स्तोत्र के सभी श्लोक 'पृथ्वी-छंद' में लिखे गये है। भुवन पावनी श्रीयमुना-भुवम् अधिगताम् पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर स्व-स्वरूप से प्राणी मात्र का, जिस तरह, उद्धार कर रही है, उसी तरह, 'पृथ्वी-छंद' में अवतरित, वह स्व-स्वरूप से तथा स्व-नाम से भी-द्विविध प्रकार से-इसी कार्य के संपादन में तत्पर हैं। प्रस्तुत पृथ्वी-छंद के प्रत्येक पद में, श्रीयमुना का, अमंद-पूरोज्ज्वल-प्रवाहरूप उन्नतावनत-गति-विलास, उनके पृथ्वीगत स्वरूप जैसा ही अत्यंत मधुर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। पृथ्वी-छंद की तरंगायित-गति, उसकी ताल-बद्ध-लय, उतनी ही रमणीय है, जितनी, मुक्ता-जटित-कंकणों और नुपूरों में समलंकृत श्रीश्यामा की विलास-गति।

इस श्लोक में, श्री यमुना के सकल सिद्धि दातृत्व रूप प्रथम ऐश्वर्य का निरूपण किया गया है।

श्रीकृष्णदास

श्री यमुने तुमसी एक हो जु तुमही,
करिकृपा दरस निसिवासर दीजिये, तिहारे गुनगानको रहे उद्यमही।।
तिहारे पाये तें सकल निधि पावही, चरण-कमल चित-भ्रमर भ्रमही।।
कृष्णदासनि कहें कौन यह, तय कियो तिहारे ढिंग रहत है लता द्रुमही।।

कृपा जलधि संश्रिते मम मन सुखं भावय।
प्रत्येक श्लोक के साथ इन पंक्तियों को बोलने से संपुटित पाठ हो जाता है।

कलिन्दगिरि मस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्ला
विलासगमनोल्लसत्-प्रकट-गण्ड-शैलोन्नता।
सघोषगति-दन्तुरा समधिरूढदोलोत्तमा
मुकुन्द-रति-वर्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता।।२।।

(२)

विपुल-वेग से श्वेतोज्ज्वल-सी, उतरी तुम कलिंद-गिरी पर।
विशद शिलाओं पर उन्नत-सी, तेरा गति - विलास सुंदर !!!
मानों, दोलारूढ़ जारही, पुलकित मधुर गाती।
पद्म-बंधु-रवि-तनये ! जय हो ! रति मुकुंद में प्रकटाती।।२।।

अनुवाद : कलिंद गिरि के शिखरपर बड़े वेग-पूर्वक गिरते हुये जल-प्रवाह की फेन-राशियों से उज्ज्वल प्रतीत होती हुयी, विलास-पूर्वक गमन काल में, प्रवाह वेग से ऊपर उछलते हुये, सुशोभित विशाल-शिला-खण्डों के साथ उच्छलित-तरंगों से समुन्नत, (मधुर) शब्द सहित अभिसरण से विविध विकारवाली, जल-प्रवाह रूपी उत्तमदोला में आरूढ़, रसाकर-कमल के मित्र सूर्य की पुत्री, मुकुन्द-रति-संवर्धिनी श्रीयमुना सर्वोपरि-विराजमान है।।२।।

व्याख्या - प्राकट्य प्रकारः- 'श्रीयमुना के आविर्भाव का प्रकार भी, भगवान् की तरह अलौकिक है। भगवान्, सर्वप्रथम, वसुदेव तथा देवकी के वरदानार्थ उनके समक्ष आवि-र्भूत हुये, तत्पश्चात्, पूर्वाचरित तप तथा विरह से संतप्त, उन दोनों के तापात्मक-हृदय से प्रकट होकर, नन्द के घर पधारे और नन्द-पुत्र कहलाये। यहाँ अपनी लीला-स्थली गोकुल में, वृज-सुंदरी-वृंद के साथ आपने अपनी रसात्मक लीलायें प्रकट कीं। इसी तरह, श्रीयमुना भी, प्रथम, सूर्यमंडलान्तर्गत-नारायण के आनन्दमय-हृदय से प्रकट हुयीं, फिर, उस तापात्मक रवि-मंडल से, द्रवी-भूत-रस स्वरूप में-कलिंद गिरि ऊपर-अवतरित होकर कलिन्द-नंदिनी कहलायीं। यहाँ से अवनि-तल पर पधार कर लीला स्थली गोकुल में भक्तमंडलों से आ मिलीं।'

श्रीयमुना का स्वरूप :- भगवान् के सर्वाङ्गीण श्रम-रस से समन्वित श्रीयमुना द्रवीभूत रसात्मिका है और यही आपका मूल-रूप है अर्थात् धर्मी-स्वरूप है। श्रीयमुना, प्रथम, शुद्ध-सत्व-मय नारायण के हृदय से, केवल अपने धर्म-स्वरूप में प्रकट हुयीं तत्पश्चात् सूर्य-मंडल से अपने मूलरूप में, द्रवीभूत-रसात्मा-स्वरूप में, भूतल पर अवतीर्ण होकर पुष्टि लीला की सर्वेश्वरी बनीं। श्रीकृष्ण भी, प्रथम केवल धर्म-स्वरूप से वसुदेव के यहां प्रकट हुये, फिर यहां से नन्द के घर अपने धर्मी स्वरूप से, घनीभूत रसात्मास्वरूप से-पधारकर, पुष्टि लीलार्थ अपनी सर्वाङ्ग-संबंधिनी श्रीयमुना से आ मिले।

।। श्री महोज्ज्वलायै नमः ।।

अन्य साधारण नदियों की उत्पत्ति, सूर्य की किरणों द्वारा, प्रायः वाष्प-रूप जल से मानी जाती है। सामान्य नदियों का नदीपना जो श्रीयमुना में भी घटता है वह केवल आपके आधिभौतिक-स्वरूप में। प्रस्तुत स्तोत्र के इस श्लोक में तो श्रीयमुना के सभी से विशिष्ट, सर्वोपरि, आधिदैविक-स्वरूप का ही उल्लेख किया गया है। श्रीयमुना का अवतरण, अन्य नदियों की तरह, भौतिक सूर्य से नहीं है। अतः श्रीयमुना आधिदैविक स्वरूपा है। श्रीमद्-आचार्य-चरणने त्रिविधि सृष्टि मानी है। आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक। इन में से, आधिदैविक सृष्टि वह कहलाती है जिसका प्रतिपादन वेदने किया हो, जो वेद से संबंधित हो। बृहन्नारायणोपनिषद् के '**आदित्यो वा एष एतन्मंडलं तपति**' इस शीर्षक के अनुवाक् अर्थात् अध्याय में, सूर्य की वेदात्मकता का प्रतिपादन किया गया है। वेदान्त-सूत्रों के '**अन्तस्तद्धर्माधिकरण**' में, श्री व्यास के निर्णयानुसार, इसी '**आदित्य मंडल**' में स्थित 'पुरुष को' 'परब्रह्म' माना है। तदुपरान्त, पद्म-पुराण के यमुना माहात्म्य में भी वेद साक्षात् सूर्य कहा गया है। '**त्रय्येषा ऋक् यजुसाम्नादित्य-इति गीयते**' अर्थात् यह आदित्य-सूर्य-ही ऋक्यजु-सामरूप वेद-त्रयी है। सूर्य वेदमय है। श्री यमुना साक्षात् इसी वेद-मय सूर्य की पुत्री है-जिसको, सूर्य, वात्सल्य के कारण, उदयाचल से अस्ताचल तक, नित्य अपने साथ ही रखता है - '**दिवसे दिवसे भानुरादायाऽदायवत्सलः- उदयाचलतः पुत्रीं नयत्यस्ताचलं मुने।**' इसी पुराण में, स्वयं श्रीयमुना के स्वरूप का भी परिचय दिया गया है जो '**रस**' विश्व का परम आधार है, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है तथा जो '**ब्रह्म**' इस नाम से उपनिषदों में संकीर्तित है-श्रीयमुना स्वयं वही है'':-

''रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्दलक्षणः।

ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतस्तदेव यमुना स्वयम्''।।

इन अवतरणों से श्रीयमुना के आधि-दैविक स्वरूप का स-प्रमाण प्रतिपादन हो जाता है। वर्षा की तरह सूर्य किरणों से, अन्य भौतिक नदियों के समान, श्री यमुना का, न तो स्वरूप है, न उद्भव। श्रीमद्-आचार्य-चरण ने श्रीयमुना को सूर्य पुत्री कहा है '**जयति पद्म-बन्धोः सुता**' कमल के मित्र सूर्य-तनूजा की जय हो! इस पद द्वारा वेद-रूप, आदित्य से संबंधित श्रीयमुना के आधिदैविक स्वरूप का ही निर्देश किया गया है।

कलिन्दगिरिमस्त के पतदमन्दपूरोज्ज्वला- अपने पिता आदित्य से अर्थात् अपने नेहरसे विदा लेकर अपने प्राणाधिक प्रभु से मिलने की उत्कट अभिलाषा से, अमंद-वेग पूर्वक गमन करती हुई श्रीयमुना, कलिंद गिरि के शिखर पर कूद पड़ी। प्रचंड वेग से अवतरित होने के कारण, अनंत समुज्जवल फेन-राशियां-उत्पन्न हुयीं तथा अपने ही वेग को अपने में न संभाल सकने के कारण, जल-प्रवाह मानों उफनता-हुआ श्वेतोज्जवल हो उठा। इस तरह, श्वेत-फेन-राशियों से परितःआच्छादित तथा जल-प्रवाह की तीव्र गति से आवर्तित अतएव फेनायित-श्रीयमुना, श्याम होती हुई भी, उज्जवल प्रतीत होने लगीं। श्रीयमुना स्वरूपतः श्याम हैं, उज्ज्वलत्व उनका बाह्य एवं आगुन्तक धर्म है।

विलासगमनोल्लसत्- जल की विपुलता तथा साथ ही प्रवाह की अविच्छिन्न तीव्र-गति से, पर्वत के ऊँचे नीचे सभी शिखर श्रीयमुना के तल में निमग्नहो गये। समतल भूमि पर, जल-प्रवाह की गति भी प्राय: सम रहती है, किन्तु, तलस्थ ऊँचे-नीचे शिखरों पर प्रवाह, उन्नतावनत गति से, सरकता है। अमंद तथा अनवरुद्ध गति वाले प्रलय-पूरक के समान पर्वत के ऊँचे नीचे शिखरों पर तरंगायिता अर्थात् मानों आरोहण-अवरोहण करती हुयी, श्रीयमुना, विलास-पूर्वक गमन कर रही है। श्रीयमुना के विलास-गमन में श्रृंगार चेष्टा है, गति की अमंद-त्वरा में, प्रिय-समागम की उत्कट लालसा!!!

विलास-गमन काल में, श्रीयमुना के प्रलय-प्रचण्ड-तरंगों की चपेटों से पर्वत के विशाल-शिला-खण्ड टूट-टूट कर, जल-प्रवाह से बाहर निकलकर, ऊपर उछलते हुये (प्रकट) सुशोभित (उल्लसत्) हो रहे हैं। ऊपर उच्छलित-शिला-खण्डों के साथ श्रीयमुना की उत्ताल-तरंगें भी उछलती हुई जाती हैं-इस तरह ऊपर उछलती हुई तरल-तरंग-समुदाय से ऐसा लगता है, मानों, श्रीयमुना का जल-विपुल कलेवर उन्नत-ऊँचा हो गया है। '**प्रकट-गंड-शैलोन्नता**' इस पद के अर्थ-सौंन्दर्य की अभिव्यक्ति केवल इसी पद द्वारा संभवित है।

अत्युच्च गिरि-श्रृंग के नीचे अवतरित होती हुई श्रीयमुना के सौंन्दर्य का यह वर्णन हुआ। अब प्रस्तुत श्लोक की तृतीय पंक्ति से, विषम-भूमि पर गमन करती हुई श्रीयमुना की शोभा-विशेष का वर्णन किया गया है।

स-घोषगतिदंतुरा-प्रिय-समागमकी उत्कट-लालसा से तरंगायिता श्रीयमुना, लीला-स्थली व्रज में शीघ्र पहुँचने के लिये, अपने अमंद वेग से ऊँच नीची शिलाओं पर उछलती हुयी, मार्गान्तरित-पर्वतों को विर्शीण करती हुयी, आवर्तनों से नृत्य करती हुयी, चली जा रही है - '**लुठंति, शैलभिद्यंति स्फुरन्ति वेगवत्तरा।**' प्रियतम के संकेत-स्थल व्रज की ओर अभिसरण की इस मधु-मय वेला में, श्रीयमुना, केतकी पुष्प के समान दंतुरित-रोमांचित-है। श्रीयमुना में नुपूर धारण किये हैं, जल का कल-रब ही नुपूरों की रुनझुन है। नुपूरों की इस रुनझुन से, श्री यमुना की गति संगीत-मय- (सघोषगति) हो गयी है, (घोषेण सह वर्तमाना सघोषा, तादृश्या गत्या तथा)। प्रियतम प्रभु से संमिलन की विविध रसमयी संवेदनाओं से अभिभूत श्रीयमुना, अन्तरुद्गत-रजोगुण-जनित-कामावेश से मधुर शब्द में कुछ गुनगुनाती हुयी, चली जा रही हैं - (सघोषगति-दंतुरा)। घोष का अर्थ 'शब्द' है, अत: 'सघोष-गति' का अर्थ शब्द सहित गति-गमन, होता है। इसी अर्थ में उपरोक्त व्याख्या की गयी है।

घोष का दूसरा अर्थ व्रज भी है। व्रजजन तथा गोवृंदादि, नित्य व्रज के साथ ही रहने के कारण, 'स-घोष' कहलाते है। व्रज इनकी निरोध-स्थली है, इसको छोड़कर वे कदापि अन्यत्र नहीं जाते। इनकी एक मात्र समाश्रया श्रीयमुना है। इन व्रज-जनों की गति-क्रीड़ायें अथवा पर्यटनार्थ-श्रीयमुना तक ही सीमित है। इसी तरह, श्रीयमुना का भी व्रज से नित्य संबंध है। अत: श्रीयमुना भी 'सघोष' है। श्रीयमुना तथा घोष अर्थात् व्रजजन, दोनों ही लीला-संबंधी है। समान-भाव वालों में, पारस्परिक संगति से, भावाभिवृद्धि होना लोक प्रसिद्ध है। अत: श्रीयमुना में, व्रजजनों के साहचर्य से, भावोदय जनित विविध विकारमयता

सहज ही है। इस अर्थ में, यह प्रश्न किया जा सकता है कि श्रीयमुना ने, अभी अपने मूल-धाम से, प्रस्थान ही किया है, व्रज-भूमि तक अभी पहुंच ही नहीं पायी, तो फिर, उनकी अर्थात् श्रीयमुना की, 'सघोष गति' व्रजजनों से पारस्परिक संगति की संभावना ही कैसी ? इसके उत्तर में श्री पुरुषोत्तमजी समाधान करते हैं कि भगवद्-लीला नित्य है-अत: व्रज का, श्रीयमुना के मूल-धाम से, नित्य ही संबंध रहता है। अपने मूल धाम में भी श्रीयमुना व्रज से नित्य संबंधित है।

श्रीपुरुषोत्तमजी के मत में, घोष का, 'व्रज' अर्थ की अपेक्षा, 'अर्थ' उत्तम है। व्रज पक्ष में अर्थ करने से, प्रथम तो उत्प्रेक्षा का सहारा लेना पड़ता है यथा ''व्रजजनों की संगति से श्रीयमुना भी मानों विविध-विकारवाली है।'' तदुपरांत, इस अर्थ से यह प्रतीत होता है कि श्रीयमुना में, भगवद्-भाव-सुलभ सहज-विकारमयता नहीं है अपितु व्रजजनों की संगति से यह सब कुछ है। इस प्रकार, इस अर्थ से, कथन की स्वाभाविकता में भी, न्यूनता आ जाती है, तथापि 'घोष' के शब्द तथा 'व्रज' दोनों ही अर्थ संग्राह्य है।

'सघोष-गति दंतुरा' पद में 'दंतुरा' का अर्थ है **''विविध-विकारवाली''** (**दंतुर-शब्देन विविध-विकारवत्त्व मुच्यते**)। विकार, देह का, रसानुकूल बाह्य एवं आभ्यंतरीय धर्म विशेष है जो रसशास्त्र में **'भाव'** कहलाता है। रोमांच, आभ्यंतरीय काम विकार की बाह्य अभिव्यक्ति होने के कारण, शृंगार रसका सात्विक भाव है। अत:, यहां दंतुरा का अर्थ रोमांचित किया जा सकता है। तथापि, दंतुर शब्द से, उसके लाक्षणिक अर्थ के अनुसार, श्रीयमुना की विविध-विकारमयता का ही निर्देश किया गया है। **'दंतुरं तून्नातावनतं'** दंतुर का यहां कोषोक्त **'उन्नतावनत'** अर्थ नहीं लिया गया क्योंकि श्रीयमुना की नुन्नतावनत गति का वर्णन, उनके **'विलास गमनोल्लसत्'** विशेषण द्वारा हो चुका है। अत: उसी अर्थ की पुनरुक्ति के दोष से बचने के लिये **'दंतुरा'** का 'विविध विकारमयी' अर्थ ही उचित है - (श्री.पु.)।

श्रीयमुना, भूतल-गत स्थूल तथा सूक्ष्म शिलाओं पर से, प्रवाहित हो रही है। अत:, जल-मग्न इन स्थूल तथा सूक्ष्म शिलाओं के छोटे बड़े-ऊँचे उठे हुये नुकीले भाग आपके उन्नतावनत-प्रवाह के ऊपरी सतह पर निकले हुये दीख पड़ते है। आरी की दांती के समान, इन शिलाओं के तीक्ष्णाग्र भाग जल की सतह पर सर्वत्र फैले हुये ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों श्रीयमुना रोमांचित (दंतुरा) हो उठी हों। श्रीयमुना में भीषण आवर्त उठ रहे हैं। ये आवर्त श्रीयमुना के अन्तरुद्गत-उच्छलित-मनोभव के प्रबल वेग की स्पष्ट प्रतीति करा रहे हैं। जितना प्रबल मनोभव-वेग, उतने ही प्रबल आवर्तन!!! श्रीयमुना की तरंगायित भुजाओं में कमल पुष्प हैं, अपने प्रिय-प्रभु के पद-पद्म में अर्पित करने के लिये। रोमांचिता, विविध विकाराभिभूता, अभिसार-परायणा श्रीयमुना का, लीला संबंधी, यह आधिभौतिक स्वरूप है !!!

समधिरूढदोलोत्तमा-भगवत्-संमिलन की विविध-भाव-विवशता में श्रीयमुना इतनी खो गयी है कि आपको केवल गमन-मात्र की स्फूर्ति है। यद्यपि श्रीयमुना अपने जल-प्रवाह रूपी शिविका में आरूढ हैं तथापि प्रभु-संमिलन की एकांत तन्मयता में, आपको केवल अपनी गमन-चेष्टा की ही स्फूर्ति है, दोलाधिरोहण की प्रतीति ही नहीं रही!!! 'सघोषगतिदंतुरा समधिरूढोलोत्तमा' पंक्ति में 'समधिरूढदोलो

त्तमा का पदच्छेद असमधिरूढदोलोत्तमा भी बनता है। जिसका अर्थ है शिविका में आरूढ़ नही है तथापि लगता है मानों आरूढ है।' भाव यह है कि ऊँची नीची भूमि पर बहते हुये जल-प्रवाह की गति-शोभा ऐसी लगती है मानो दोली लेजायी जा रही हो अथवा मानों झूलाझूल रहा हो-**इतस्ततः** दोलायमान हो रहा हो। उन्नतावनत गतिपूर्वक बहते हुये जल-प्रवाह से दोलायमान झूले की अथवा नीयमान दोली की प्रतीति होना सहज है। जल-प्रवाह, श्रीयमुना का आधिभौतिक स्वरूप है। अतः ऐसा लगता है कि आधिदैविक-स्वरूपा श्रीयमुना अपने आधिभौतिक जल-प्रवाह रूप दोली में विराजमान होकर प्रस्थान कर रही है। अथवा, वस्तुतः श्रीयमुना दोली अथवा झूले में आरूढ़ नही हैं, तथापि उन्नतावनत बहते हुये जल-प्रवाह की गति-शोभा से ऐसा लगता है कि श्रीयमुना दोली में ही आरूढ़ हैं।

प्रस्तुत श्लोक में, श्रीयमुना के 'भगवद्-रति-संवर्धन' रूप ऐश्वर्य का संकेत मिलता है जो इसी-श्लोक में कथित, श्रीयमुना के 'मुकुन्द रति वर्धिनी' नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। श्रीयमुना के मुकुन्द-रतिवर्धिनी नाम में विलक्षणता है। मुकुंद-मोक्षदाता को कहते हैं। मोक्ष और रति विरुद्ध स्वभाववाले हैं। अतः मोक्ष की प्रकृति वाले मुकुन्द में, रति-भाव की अभिवृद्धि करने वाली श्रीयमुना का मुकुन्द-रति वर्धिनी नाम, गुणानुरूप है। श्रीयमुना के निरतिशय-स्नेह की ही यह चमत्कृति है ही मोक्ष-प्रदाता मुकुन्द ने, श्रीयमुना में ही 'रस की निगूढ-अनुभूति' प्राप्तकरी। श्रीयमुना केवल मुकुन्द में ही रति का संवर्धन नहीं करती, अपितु, स्वामिनीयों में भी मुकुन्द-के प्रति रति-भाव की संवर्धिका है। 'मुकुन्द-रति-वर्धिनी' वही हो सकती है जो उभयोप-कारिणी हो। श्रीयमुना ही उभय-संबंधिनी कहलाती है।

प्रस्तुत श्लोक में '**पद्म-बन्धोः सुता**' यह पद, यद्यपि '**जयति**' क्रिया पदके कर्ता रूप में प्रयुक्त होने के कारण, विशेष्य है-तथापि इसे श्रीयमुना का विशेषण ही मानना चाहिये, क्योंकि अपने आधिदैविक स्वरूप से नित्य विराजमान श्रीयमुना ही वहां स्तुत्य हुई है। प्रस्तुत श्लोक में '**कलिंदगिरि**' से लेकर '**जयति पद्मबन्धोः सुता**' पर्यत, पांचों ही विशेषण, श्रीयमुना के 'भगवद्-रति-संवर्धकत्व' धर्म में उपकारक है। अतः मुकुन्द रतिवर्धिनी ही इस श्लोक में विशेष्य है। **अमन्द-पूरोज्ज्वला, गण्डशैलोन्नता, सघोषगति-दंतुरा, समधिरूढ-दोलोत्तमा** तथा पद्म-बंध की सुता श्रीयमुना, निःसंदेह, मुकुन्द-रति-संवर्धिनी है - (श्री.पु.)

इस श्लोक में श्रीयमुना के भगवद्-रति-संवर्धकत्व रूप द्वितीय-ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है।।2।।

श्रीनंददास

भक्त पर करो कृपा श्रीयमुने जु एसी,
छांडि निजधाम विश्राम भूतल कियो, प्रकट लीला दिखाई जु तेसी।।
परम परमारथ करतहें सबन सों, देत अद्भुतरूप आप जेसी।।
नंददास यों जानि दृढ करि चरण गहे, एक रसना कहा कहों विसेसी।।

॥ श्री श्रीगीतायै नमः ॥

श्री यमुनाष्टकम्

भुवं भुवन-पावनी मधिगतामनेक-स्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुक-मयूर-हंसादिभिः
तरंग-भुज-कङ्कण-प्रकट-मुक्तिका-वालुका-
नितम्ब-तट-सुन्दरीं नमत कृष्ण-तुर्य-प्रियाम्।।३।।

(३)

भुवन-पावनी तुम भूतल को, दोष-रहित करने आयी।
हंस, मोर, शुक कलरव करती, प्रिय-सखियां-सेवक लायी।।
मुक्ता-रज-कण-कंकण-भूषित-भुज-तरंग कटि-तट विलसे।
गुणातीत श्रीकृष्ण-प्रिया को, नमन कीजिये तन, मन से।।३।।

अनुवाद : भुवन को पावन करने वाली और इसी हेतु से धरणीतल अवतरित, विविध-स्वरों में आलाप करते हुए शुक, मयूर, हंस आदि प्रिय-व समूह रूप सेविकाओं द्वारा सेवित, मुक्ताफल रूपी सिकता-जटित-कंकणों से सुशोभित तरंग-रुपी श्रीहस्त को, नितंब-तट पर स्थापित किये हुये, सौंन्दर्यमयी, श्रीकृष्ण चतुर्थ प्रिया श्रीयमुना को नमन कीजिये।।३।।

व्याख्या : भुवं भुवनपावनीमधिगताम्-श्रीयमुना रवि-मंडल से अवतरित हुयी है-धरणीतल को पावन करने के लिये, क्योंकि उसे भगवद्-रमणोपयोगी जो बनाना है। सर्व-लोक को पावन करने वाली श्रीयमुना का भूतल पर आगमन हुआ है भगवान् से बिछुड़े हुये दैवी जीवों के शरीर को निष्पाप बनाकर उन्हें भगवत्-सेवोपयोगी बनाने के लिये, क्योंहि उन्हें भगवद्-भाव से संपन्न जो करना है। श्रीयमुना पापद्रुम-कुठारिणी हैं, पावनी है। सप्त ग्रहों एवं सप्त-दीपों को पावन करने का वचन आपने यमराज को दिया है। शरणागत जीव के पाप-व्यूह का आप भेदन कर देती है-'स्व-आश्रित-अघ-अपनुत्यै।' आपका स्वभाव है, शरण में आये हुये के पाप-नाश करने का इतना ही नहीं, जिस तरह-अग्नि-तप्त-लोह-गोलक, समीपस्थ अन्य लोहगोलक में, अपनी दाहकता संक्रमित कर देता है, उसी तरह श्रीयमुना भी, स्व-शरण में आये हुये जीव को, स्व-समान धर्मो से सम्पन्न कर देती है। परम भगवदीय की यह एक सहज वृत्ति है।

श्रीयमुना के भगवद्-रति संवर्धक-रूप ऐश्वर्य का निर्देश द्वितीय श्लोक में हो चुका है। प्रस्तुत श्लोक में , इस 'रति-भाव' के स्थायित्व में, दृढी-करण में, जो धर्म सानुकूल माने गये हैं, उनका उल्लेख किया गया है। विभावादि सामग्री, सेवकादि-समाज तथा स्वरूप-सौन्दर्य-ये धर्म, रति-रस के आविर्भाव में तथा उसके पोषण में अत्यन्त उपकारक माने जाते है। विविध-लीलोपयोगीनी श्रीयमुना, इन सभी धर्मो

से समन्वित है। रस की चरम अभिव्यक्ति, विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा संचारी भावों द्वारा होती है। विभाव के आलंबन-तथा उद्दीपन ऐसे दो भेद रस-शास्त्र में प्रसिद्ध है। विविध-रस-मयी लीलाओं द्वारा अपने स्वरूपानन्द के दानार्थ भगवान् प्रकट हुये तो इनके इस अभिलषित कार्य में परम-सहकारिणी, आधिदैविकी श्रीयमुना भी प्रादूर्भुत हुयी - **'भगवान् रमणार्थ अवतीर्णः तदा इयमपि तदुपयोगिनी अवतीर्णा।'** श्रीमुकुंद की रसमयी क्रीड़ाओं में रति-भाव की प्रतिक्षण नूतनतम अभिवृद्धि करने वाले अपने निरतिश-सौंन्दर्य के साथ, आलंबन तथा उद्दीपन-विभावों की साक्षात् निधि-स्वरूपा श्रीयमुना, लीलारंभ काल से पूर्व ही, उपस्थित हो गयी। वस्तुतः श्रीयमुना ही आलंबन-भाव है, श्रीयमुनाही उद्दीपन-भाव है, श्रीयमुना ही संचारी भाव है। विभाव, अनुभाव आदि से ही तो रस अभिव्यक्त होता है। यदि श्रीयमुना न होती तो **'कृष्ण-रस'** कैसे प्रकट होता? भगवान् अपने **'स्वरूपानंद'** का दान कैसे करते! श्रीकृष्ण के **'स्वरूपानंद'** को अभिव्यक्त करने वाला तत्त्व ही तो 'श्रीयमुना' है। इस तरह श्रीयमुना, रस की चरम-अभिव्यक्ति करने वाले सभी भावों की, धर्मो की, गुणों की, एकमात्र निधि है। श्रीयमुना **'कृष्ण-रस'** के स्थायित्व में, एकांत-हेतु है।

प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः- उनका प्रिय सेविका-समाज, उनके पीछे पीछे आ गया। जहाँ जो उचित हो वहाँ वैसा ही करने वाली 'प्रिया' कहलाती है- **(यत्र यथोचितं तत्र तथा कुर्वन्ति इति 'प्रिया' पदम् श्री.पु.)**। शुक, मयूर, हंस आदि, प्रिय-सखियों की तरह, विविध-मधुर-स्वरों में कीर्तन करते हुये, श्रीयमुना की परिचर्या में तत्पर है। शुक, वाचिकी सेवा कर रहा है, मयूर और हंस, क्रमशः कायिकी एवं मानसी सेवा में, तन्मय है।

'तरंग-भुज-कंकण-प्रकट-मुक्तिका-बालुका-नितंब-तट-सुंदरी' - श्रीयमुना की, भावावेश के अनुसार, विविध-भंगिमा वाली कोमल-भुजायें ही तरंगायित लहरों जैसी शोभायमान हो रही है। वस्तुतः यह लहरें नहीं है, किन्तु श्रीयमुना की भुजायें ही है, जिनमें, सिकता के चकचकित कणों के समान मुक्ता फलों से जटित कंकण, सुशोभित है। कंकणों में जटित मुक्तावलि, लोक दृष्टि में सिकता है, वस्तुतः वे मुक्ता ही है। आपके नितंब-युगल ही उभयतः उन्नततट है। तरंग-संस्पृष्ट-तट की शोभा को तिरस्कृत करने वाली **'कटि-न्यस्त-हस्ता'** श्री यमुना साक्षात् शृंगार-रस की अधिदेवता है। इस तरह अप्राकृत-आभूषणों में समलंकृत-अप्राकृत-धर्मा श्रीयमुना में, भगवान् की सहज प्रीति है। भगवान् भी तो स्वयं अप्राकृत है, अप्राकृत आभूषणों से आप भी तो सजे धजे हैं- **उद्दाम-कांच्यङ्गदकंकणादिभिः विराजमानम्।** अप्राकृत की अप्राकृत में, समान की समान में, प्रीति, स्वाभाविक मानी जाती है।

भगवान् के प्रति अपनी इसी उत्कट प्रीति को लेकर श्रीयमुना ने अपने मूल धाम का त्याग किया, भगवान की अभिलाषा की परिपूर्ति के लिये भूतल पर अवतरित हुयी-क्योंकि उनके **'क्रीड़ा भाण्ड'** भुवन को, विशेषतः व्रज को दोष रहित करके उसे पावन जो बनाना था, उनके रमणोपयोगी सामग्री, समाज तथा साहित्य का संपादन जो करना था। इसी तरह, भगवान् का भी श्रीयमुना में स्नेह है। किन्तु,

भगवान् के इस स्नेह में '**निरतिशयता**' है- क्योंकि '**नितंब-तट-सुंदरी**'-सुश्रोणी-तटा-श्रीयमुना का सौन्दर्य स्वयं निरतिशय है। तदुपरांत, श्रीयमुना ने स्वयं को अलौकिक सौन्दर्य से संजोया है, क्योंकि, उनके इस सौन्दर्य के सौभाग्य की फल-सिद्धि, प्रिय की प्रीति को प्रतिक्षण उद्बुद्ध करने में ही हैं-'**प्रियेषु सौभाग्य-फला हि चारुता।**' देह में सौन्दर्य की अभिलाषा, उसे प्रसाधित करने की लालसा क्यों? इसीलिये कि वह भगवान् श्रीकृष्ण की रति में निरंतर पोषक बन सकें। '**रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य गीतान्-पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः**' रम्य वस्तुओं के दर्शन से तथा मधुर गीतों के श्रवण से '**सुखित**'- अर्थात् प्रियतमाश्लिष्ट प्राणी भी पर्युत्सु की -भाव से अभिभूत हो जाता है यह लौकिक स्थिति है। यदि रमणीयतत्व- की अधिदेवता श्रीयमुना, काम-गुरु-श्रीकृष्ण में '**पर्युत्सुकता**' की हेतु बनती है तो क्या सौन्दर्य की इस '**निरति-शयता**' को, वाणी का विषय बनाया जा सकता है।

नमत कृष्णतुर्यप्रियाम्- प्रस्तुत श्लोक की अंतिम-पंक्ति में, श्रीमद्-आचार्य-चरण अपने शिष्यों को श्रीकृष्ण-तुर्य-प्रिया-श्रीयमुना को नमन करने का आदेश देते हैं, '**नमत कृष्णतुर्यप्रियाम्।**' यहां, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत श्लोक में विविधि-लीलोपयोगिनी श्रीयमुना की ही स्तुति की गयी है अतः उनको श्रीकृष्ण की तुर्य-चतुर्थ-प्रिया जो कहा गया वह उचित नहीं, क्योंकि उनकी तुर्य (चतुर्थ) प्रिया होने का अधिकार तो, उनकी चतुर्थ-भार्या कालिन्दी का ही है। भगवान् की आठ पट्टमहिषियों में, परिणय-क्रमानुसार कालिन्दी चतुर्थ महिषी है। श्रीयमुना, कालिन्दी से भिन्न है। श्री भागवत में '**कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुना जले**' यहां कालिन्दी के, यमुना जल में निवास के कथन द्वारा, कालिन्दी और यमुना की भिन्नता का निर्देश किया गया है।

प्रस्तुत श्लोक में, वस्तुतः तुर्य (चतुर्थ) प्रिया से श्रीकृष्ण की चतुर्थ भार्या रूप कालिन्दी अभिप्रेत नहीं है। इसमें तुर्य-प्रिया रूप श्री यमुना का ही निर्देष किया गया है। क्योंकि, व्रज में, भगवद्-भोग्य चतुर्विध-स्वामिनी (प्रिया) यूथ हैं। प्रथम, श्री राधिका-यूथ तामस है, द्वितीय, चंद्रावली-यूथ राजस है, तृतीय, कुमारिका-यूथ सात्विक तथा तुर्य (चतुर्थ)- यूथ, गुणातीत श्रीयमुना का है। इन चतुर्विध-यूथाग्रणी स्वामिनीयों में भी, जल-क्रीड़ा-रूप सर्वाङ्ग से अर्थात् अंग-अंग के संबंध-सहित, भगवान् श्रीकृष्ण ने यदि किसी के साथ स्वतन्त्रतया पृथक्-रमण किया है तो वह केवल श्रीयमुना ही है। इसी अभिप्राय से, श्रीयमुना को, '**तुर्य-भार्या**' न कहकर, '**तुर्य-प्रिया**' कहा है। 'श्रीकृष्ण की अष्ट' विध-पत्नियों में अपरिगणित होने से, श्रीयमुना में जब 'प्रियात्व' ही असिद्ध है तो '**तुर्य-प्रियात्व**' अधिक असिद्ध है- इस तरह की शंका यहां निरर्थक है। भार्या ही प्रिया हो सकती है, यह कोई नियम नहीं। भार्या न होते हुये भी, श्रीयमुना प्रभु को निरतिशय-प्रिय है। श्रीकृष्ण ने, श्रीयमुना को, निरंतर-सानिध्य में रहने का वरदान दिया है - '**सप्तरात्रात्तु सान्निध्यं न ते त्यक्ष्यामि कर्हिचित्।**' अत्यन्त प्रिय को ही सर्वदा-सान्निध्य का एकांत-सौभाग्य प्रदान किया जाता है। इस तरह श्रीयमुना के 'प्रियात्व' सिद्ध होने पर, उनका तुर्य-प्रियात्व स्वयं सिद्ध है - **(प्रियात्वस्य सिद्धौ...तुर्य प्रियात्वस्य सुखेनैव सिद्धिरिति)** श्री.पु.)।

'श्री भागवत में जिस यमुना का कर्षण-रूप निरोध, भगवदाविष्ट श्रीबलराम ने किया था और फिर अन्त में, जिसने श्रीकृष्ण को पति-रूप में प्राप्त किया, वह कालिन्दी रूप यमुना, भगवद्-लीलोपयोगिनी यमुना नही थी-अर्थात् श्रीकृष्ण की तुर्य (चतुर्थ) गुणातीत-प्रिया रूप श्रीयमुना, उनकी तुर्य (चतुर्थ) भार्या रूप कालिदी नहीं है। तुर्य-प्रिया रूप श्रीयमुना ही श्रीभगवद्-लीला-मध्य-पातिनी है, क्योंकि वह सर्वशः दोष-संभावना की गंध से भी रहित है-कालिन्दी के विषय में यह नहीं कहा जा सकता।' बात यह है कि, कालिन्दी ने विष्णु (श्रीकृष्ण) को पति रूप में चाहा था, किन्तु, उसके भाई यम का इस में विरोध था। अतः कालिन्दी में, यम के प्रति क्षोभ-क्रोध की भावना उत्पन्न हो गयी। क्रोध एक महान् दोष है। अपनी इसी सदोषता के कारण, कालिन्दी का, श्रीकृष्ण ने, कर्षण-द्वारा निरोध किया था। अपने प्रेमय-बल से भगवान् ने, उसे, प्रथम, दोष-रहित बनाकर, फिर, अपनी चतुर्थ भार्या रूप में अंगीकरण द्वारा, कृतकृत्य किया। भगवान्, भक्त का, अपने में निरोध द्विविध-प्रकार से करते है-दंड से तथा अनुग्रह से।-("श्री गोकुलराय भट्ट द. स्कं. उ. श्लो. 92 प्रकरणार्थ का सारांश")।

चतुर्थ-भार्या रूप कालिन्दी तथा चतुर्थ प्रियारूप यमुना-दोनों सूर्य की कन्यायें हैं। श्रीयमुना साक्षात् सूर्य की, तथा कलिंद-भावापन्न सूर्य की, कालिन्दी। अतः लोक में दोनों को अभिन्न माना गया है। प्रसंगतः यह भी जान लेना उचित होगा कि श्रीकृष्ण की अष्ट-पत्नियों में-प्रथम पत्नि-पंचक-कालिन्दी, मित्र-विंदा, सत्या, भद्रा तथा लक्ष्मणा यथाक्रम-ज्ञान, तप, योग, वैराग्य तथा भक्ति रूप-पंच-पर्वात्मिका विद्या है। श्रीयमुना इससे भी अतीत गुणातीत है।

प्रस्तुत श्लोक में, श्रीयमुना के, भगवद्-प्राप्ति में आने वाले प्रत्यूह-व्यूह को दूर करके, भगवद्-अनुभूति की योग्यता के अनुकूल शुद्धि-संपादनार्थ, भुवन-पावनीत्व रूप तृतीय ऐश्वर्य का निरूपण किया गया है।।३।।

श्रीचतुर्भुजदास

बार बार श्री यमुने गुणगान कीजे,
एही रसनातें भजो नामरस अमृत, भाग्य जाके हैं सोई जू पीजे।।
भानुतनया दया अतिही करुणामया, इनकी करि आस अब सदाई जीजे।।
चतुर्भुजदास कहे सोई पिय पास रहे, जोई श्रीजमुनाजी के रस जू भीजे।।३।।

।। श्री मेघमालायै नमः ।।

श्री यमुनाष्टकम्
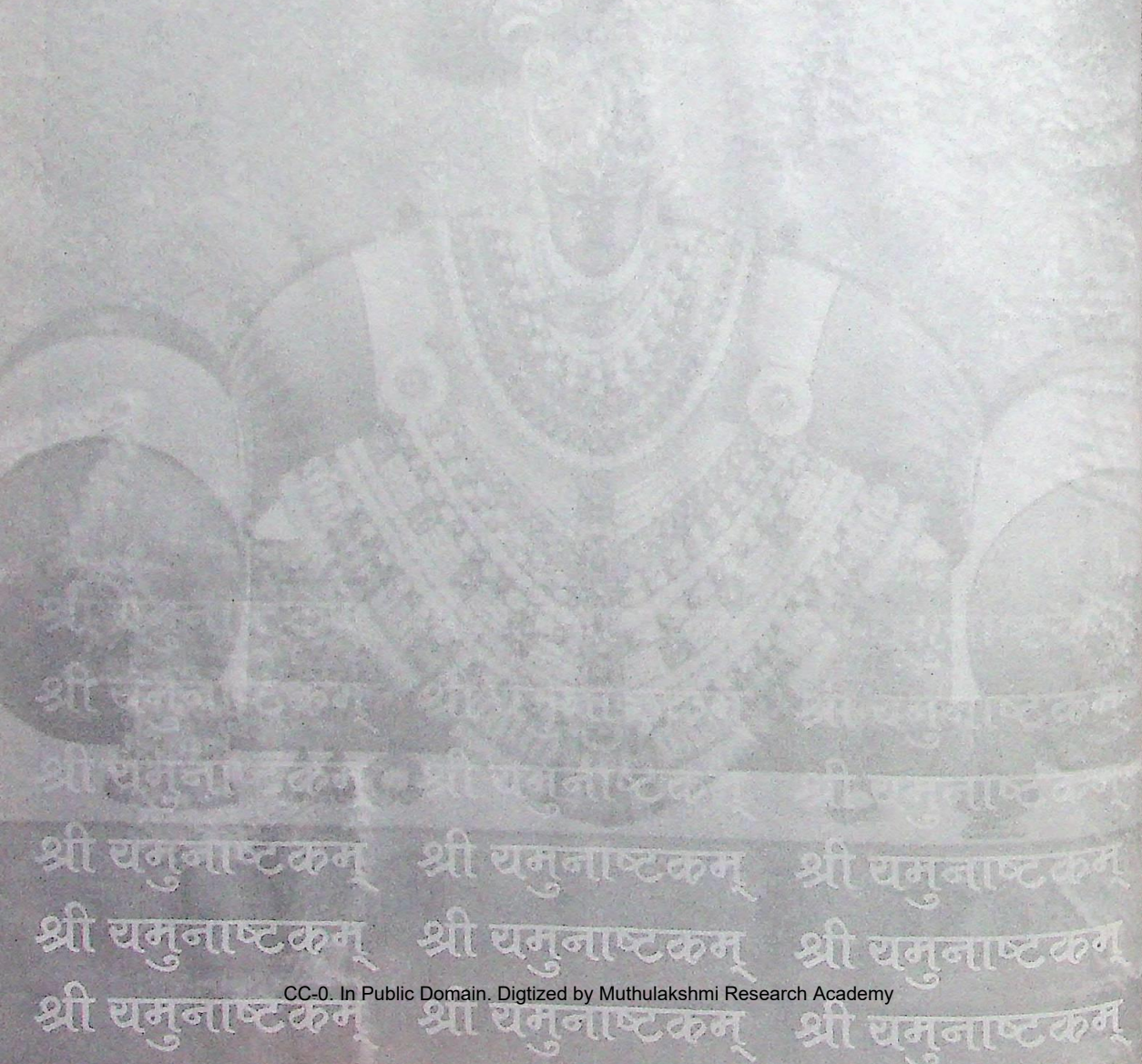
अनंत-गुण-भूषिते शिव-विरंचि-देव-स्तुते
धनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे।।
विशुद्ध-मथुरा-तटे सकल-गोप-गोपी-वृते
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनस्सुखं भावय।।४।।

(४)

अनंत-गुण-गण से समलंकृत, रुद्र, ब्रह्म महिमा गाते।
सजल-गाढ़-धन-रूप, अभिलषित, सदा पराशर ध्रुव पाते।।
तव-तट से मथुरा विशुद्ध, प्रिय सकल गोप, गोपी-जन को।
कृपा-जलधि-संश्रित-यमुने ! मन,
सुखित करो, हरि में मन को।।४।।

अनुवाद : अनंत गुणों से विभूषित, शिव ब्रह्म जैसे देवों से संस्तुत्य, घनघोर नीरद के समान श्याम, ध्रुव तथा पराशर जैसों को सर्वदा यथाभिलषित देने वाली, अपने तट-से अर्थात् सान्निध्य में मथुरा को विशुद्ध करने व सकल गोप-गोपियों से घिरी हुई तथा कृपा-जलधि (श्रीकृष्ण) में एक-एक को प्राप्त हे श्रीयमुने! अनन्त-गुण-विभूषित, शिव, विरंचि जैसे देवों से संस्तुत्य घनघोर-नीरद के समान श्याम ध्रुव तथा पाराशर को सर्वदा अभिलषित देने वाले, विशुद्ध मथुरा के तट-निकट स्थिति वाले, सकल गोप-गोपियों से हुये, अपार करुणा-समुद्र के समाश्रय-श्री हरि में, मेरे मन को, जिस तरह आनन्दित करना चाहें उस तरह करें। क्योंकि, आपसे विचारित उपाय द्वारा ही इस आनंद की प्राप्ति हो सकती है, अन्य साधनों से नहीं अथवा श्रीयमुने! मेरे मन में भगवद्-अनुभूति-सुलभ जो आनन्द है, उसको आप के मन में भावित करें, क्योंकि यह आनन्द, तभी निरंतर-अनुभव के योग्य बन सकता है जब आप उसे आप अपने मन में स्थापित करलें भगवान् ने अपने अष्ट विध ऐश्वर्य आपको ही समर्पित कर दिये हैं। वह स्वयं अनीश्वर से होकर सर्व आप ही के अधीन हो चुके है। अत एव, संप्रति जो कुछ भी होगा। आपके विचारानुसार ही होने वाला है यह आनन्द केवल आप से ही, अन्य साधनों से नहीं, संपादित किया जा सकता है।।४।।

व्याख्या : ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य, भगवान् के षड्-विध धर्म है। इन धर्मो से समन्वित भगवान् धर्मी हैं! इस तरह भगवान् के सप्त-विध-स्वरूप माने गये हैं-षड्-विध स्वरूप तो अपने से षड्-विध धर्मो से, और सप्तम स्वरूप, धर्मी स्वरूप-अर्थात् स्वस्वरूप-से। भगवान् के उपरोक्त षड्-विध धर्म श्रीयमुना में भी हैं। अत: श्रीयमुना के भी इसी तरह सप्त-विध-स्वरूप है। इस प्रकार, षड्-विध-धर्म स्वरूपों में तथा धर्मी-स्वरूप में, दोनों समान है। इसीलिये, श्रीयमुना 'कृष्ण-रूपा' अथवा 'कृष्ण-समा' नामों से

सुप्रसिद्ध है। वे कृष्ण हैं, तो यह कृष्णा-अर्थात्-गुणता तथा स्वरूपतः-दोनों अभिन्न हैं।

प्रस्तुत श्लोक में, श्रीकृष्ण तथा श्रीयमुना की गुणतः एवं स्वरूपतः अभिन्नता का प्रतिपादन, वाक्-पति श्रीमद्-आचार्य-चरण ने अपनी लाक्षणिक शैली में किया है। दोनों की स्तुति, छहों समान विशेषणों द्वारा की गयी है। श्लोकोक्त छहों विशेषण, उपरोक्त छहों धर्मों के यथाक्रम संक्षिप्त निर्वचन रूप है। प्रत्येक विशेषण, संबोधनात्मक भी है, सप्तमी विभक्ति वाला भी। संबोधनात्मक-विशेषणों द्वारा श्रीयमुना की, तथा सप्तमी-विभक्ति से, उन्ही विशेषणों द्वारा, श्रीकृष्ण की, स्वरूपाभिव्यक्ति की गयी है।

श्रीमद्-आचार्य-चरण ने, भगवान् के षड्-विध ऐश्वर्य आदि गुणों का निरूपण पुष्टिमार्गीय-परिभाषा के अनुसार किया है और, उनका इसी अभिप्राय में यहाँ प्रयोग हुआ है। इन गुणों की व्याख्या वेणु-गीत के ग्यारहवें लोक की कारिकाओं में उपलब्ध है। वेणु-गीत के एकादश श्लोक से सोलहवें श्लोक तक-अर्थात् इन छहों श्लोकों में, भगवान् की, यथाक्रम छहों गुणों से आचारित लीलाओं का, वर्णन है। वेणु-गीत के ये श्लोक काव्य-दृष्टि से अद्वितीय है-वह काव्य, जो आत्मा की कला है। इन श्लोकों में काव्य-रस निःसीम हो गया है। भगवान् के वेणु-रव की, हरिणियां, अप्सरायें, गायें, पक्षी, सरितायें तथा मेघ जैसी मूढ तथा जड़ वस्तुओं पर भी, जो विलक्षण प्रतिक्रिया हुयी वह सचमुच अद्भुत थी। इस अलौकिक प्रतिक्रिया का हेतु, भगवद्-कृत-वेणु-नाद था और क्योंकि यह प्रभाव हरिणियों आदि पर हुआ था, अतः हरिणियां आदि यथाक्रम भगवान् के ऐश्वर्यादिगुणों के बोधक कहे गये हैं तथा **'हरिण्योऽप्सरसो गावः पक्षिणो नद्य एव च, मेघाश्चेति क्रमणैव कृष्णैश्वर्यादि-बोधकाः'** इसी प्रसंग में, वहाँ ऐश्वर्यादि गुणों का विवेचन भी किया है। अस्तु

श्लोकोक्त छहों गुणों के अभिव्यंजक-विशेषण यथाक्रम इस तरह हैं-ऐश्वर्य का **'अनन्तगुणभूषिते'** वीर्यका **'शिव विरंचि देवस्तुते'**, यश का **'धनाधननिभे, श्री का 'ध्रुवपराशराभीष्टदे''**, ज्ञान का **'विशुद्धमथुरा तटे'**, वैराग्य का **'सकलगोपगोपीवृते'**। **'कृपाजलधिसंश्रिते'** यह विशेष्य-अर्थात् धर्मी स्वरूप-माना गया है।

अनंतगुणभूषिते - इस विशेषण द्वारा भगवान् के ऐश्वर्य गुण का निरूपण किया गया है। भगवद्-गुण अनन्त एवं निरन्तर है। इन गुणों की गणना नहीं हो सकती, ये काल से अविभाज्य है। भगवान् अनन्त-अलौलिक-गुणों से निरंतर समलंकृत है, इसलिये निर्दोष पूर्ण गुण विग्रह कहलाते है लोक में भी गुण ही पूजा स्थान माना गया है **गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते**। गुण को पहिचानने वाला ही, गुणी की पूजा करेगा-अज्ञानी नहीं। ईश्वर की पूजा ज्ञानी तो करते ही है, किन्तु जब अज्ञानी-मूढ-भी पूजा-सत्कार-करने लगे तब समझ लेना चाहिये कि यही **'निरुपाधिक'** ऐश्वर्य का लक्षण है - **'ईश्वरः पूज्यते लोके मूढै रपि यदा, तदा-निरुपाधिक ऐश्वर्य-वर्णयन्तिविचक्षणः'**

श्रीयमुना में भी यही विशेषण घटता है। भगवान् ने रास-लीला में जितने गोपी-जन थे-उतने ही रूप धारण करके, प्रत्येक गोपी के साथ रमण किया था-इससे भगवान् अपने अनेक-विध-रूप धारण

करने के कारण - **'अनन्त-रुप'** अथवा **'बहु-रूप'** कहलाते हैं। श्रीयमुना इन्हीं अनन्त के भगवान् के गुणों से विभूषित है- और भगवान् के इन गुणों द्वारा वह स्व-जन के मनोरथों को सिद्ध करती है अतः अपने इन गुणों से श्रीयमुना भी, ज्ञानी अथवा अज्ञानी सभी से, सुपूजित है, और यही आपका भी निरुपाधिक ऐश्वर्य है।

श्रीमद्-अचार्य-चरणोक्त परिभाषा के सर्वशः अनुरूप वेणु गीत का यह श्लोक वस्तुतः परम रसमय है -

''धन्यास्तु मूढमतयोऽपि हिरण्य एता या नन्द-नन्दन-मुपात्तविचित्र-वेशम्।''

आकर्ण्य वेणु-रणितं सहकृष्णसाराः, पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ।।

'ये मृगपत्नियां, मूढमति होती हुयी भी धन्य है, जो वेणु-रव को सुनकर, विचित्र वेश-धारी नन्द के पुत्र की ओर प्रणय-पूर्वक अवलोकन द्वारा, अपने कृष्ण-सार मृग पतियों सहित, उनकी पूजा-सत्कार-कर रही है।'

'शिव-विरंचिदेवस्तुते'- पद से, दोनों के वीर्य-गुण का कथन हुआ है। अतिशय-शक्ति को 'वीर्य' कहते है। बल और प्रभाव में भी वीर्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। देवताओं में सर्वाधिक बल-वीर्य होता है - **'वीर्यं देवेषु'**। देवों में भी प्रमुख शिव तथा ब्रह्म-इन्द्र-आदि में तो यह निरतिशय कहा गया है। परम वीर्यवान् रुद्र, ब्रह्मा आदि भी जिससे पराभूत हों, उस श्रीकृष्ण के वीर्य का कहना ही क्या ? -

'सवनशस्तदुपधार्यसुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः'। यही प्रभाव श्रीयमुना का भी है। ब्रह्मा ने तो श्रीयमुना की प्रार्थना की ही है, शंकर भी, श्रीयमुना की प्रार्थना करते हैं-जिसका उल्लेख पद्म-पुराण में किया गया है -

तावत् भ्रमन्ति भुवने मनुजा भवोत्थ-दारिद्र्यरोगमरणव्यसनार्तिभूताः।

यावज्जलं तव महानदि! नीलनीलं पश्यन्ति नो दधति मूर्धसु सूर्यपुत्रि!।।

द्यनाघननिभे :- इस विशेषण-द्वारा यश का निरूपण किया गया है। यह विशेषण उभय-पक्ष के उस सौन्दर्य-स्वरूप का निर्देश करता है-जो सर्व-विस्मारक तथा सर्व-विश्व का जीवन-अर्थात् प्राण है। **'त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्यरूपं'** - त्रैलोक्य के सौभाग्य रूप भगवान् का सौन्दर्य है। जिस सौंदर्य के दर्शन मात्र से, अन्य सभी आसक्ति की विस्मृति हो जाती है-वह सौन्दर्य वाणी का विषय नहीं बन सकता। जो सौन्दर्य, पशु जैसे विमूढ़ प्राणियों में भी, उनकी तृणादि के प्रति प्रत्यक्ष किंवा स्वाभाविक आसक्ति की विस्मृति कराता हुआ, केवल अपनी ही रसमय-अनुभूति द्वारा, उनको चित्र-लिखित जैसा स्तब्ध बना देता हो, वह विश्व के प्राणी-मात्र को जीवन-प्रदान करने वाला, संताप का निवारक तथा आनंदानुभावक अर्थात् दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति करने वाला माना गया है, **'दंतदष्ट-कवलाःधृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवाऽसन्'**। भगवान् का यह सर्व विस्मारक स्वरूप-सौन्दर्य ही उनका यश धर्म है

– '**यशो यदि विमूढानां प्रत्यक्षाऽसक्तिवारणात्-स्वधर्मं योजयेत्तेषु, तदा भवति नान्यथा।**' यही विशेषण श्री श्यामा-यमुना में भी घटित होता है। नील-नीरद्-श्यामा श्रीयमुना का स्वरूप-सौंन्दर्य, स्वयं, श्रीकृष्ण का ही स्वरूप-सौंन्दर्य है-अतः, वह भी सर्व विस्मारक तथा विश्व के लिये प्रत्यक्ष जीवन रूप-पावन जल रूप है। जीवन, जल का पर्याय है।

'**घनाघननिभे**' पदमें '**घनाघन**' का अर्थ है – सजल गाढ-श्याम-घन तथा '**निभ**' शब्द '**स्वरुप**' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस तरह '**घनाघननिभ**' का अर्थ 'सजलगाढ श्याम-घन-स्वरूप' श्रीकृष्ण तथा श्रीयमुना होता है। श्रीकृष्ण के श्याम-वर्ण का रहस्य 'ब्रह्म-वाद' सिद्धान्त से स्पष्ट किया जा सकता है। सत्, चित्, आनन्द, भगवान् के गुण हैं। सत् से सत्य की, चित् से रजस् की तथा आनन्द से तमोगुण की सृष्टि हुई है। '**तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्**'। इस श्रुति-कथन के अनुसार, तमो-गुण की सृष्टि करके, आनन्द स्वयं, उसमें अनु-प्रविष्ट भी हुआ। आनन्द भगवत्-स्वरूप है। अर्थात् लौकिक पदार्थो में तमोगुण की श्याम-वर्णोत्पादक शक्ति, भगवद्-कृत है अर्थात् भगवद्-अनुप्रवेश से ही तमो-गुण में यह शक्ति आयी। अतः श्याम-वर्ण का मूल आधार '**आनन्द**' है और स्वयं श्रुति इसका समर्थन करती है '**आनन्द स्तमसि प्रतिष्ठितः।**' यह आनन्द शृंगार-रूप है, इसीलिये शृंगार का वर्ण श्याम है '**श्यामो हि शृंगारसः**' श्रीभागवत् में, श्याम शब्द का, शृंगार रस के अर्थ में, प्रयोग मिलता है – '**श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया**'। यहां 'श्यामे' का अर्थ सुबोधिनी ने '**शृंगार रूपे पृथौ उरसि**' अर्थात् शृंगार-रूप विशाल-वक्षस्थल में, इस तरह किया है। '**को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्**'- इस श्रुति के अनुसार आनन्द, विश्व का प्राण, जीवन-तत्त्व माना गया है। श्याम में आनन्द अनुप्रविष्ट है। श्याम-घन में ही विश्व को जीवन प्रदान करने वाले तत्त्व हैं। वह, अपने प्रति अनन्य भक्त-रूप-चातक की, प्यास मिटाता है, ताप-निवारण उसका स्वभाव है-इसीलिये, श्रीकृष्ण, अपने में अनन्य अनुरक्त भक्त की तृषा को तथा उसके विरह-संताप को निवृत्त करने वाले, 'घनश्याम' ही तो है। श्रीव्यास ने श्रीकृष्ण को '**सान्द्र-पयोद-सौभगम्**' कहा है। '**घनाघन**' इसी '**सान्द्र-पयोद**' का यथावत् पर्याय है। तदुपरांत, '**घनाघन**' में एक परम-निगूढ़-अभिप्राय भी निहित है। और मेरी मति के अनुसार यही अभिप्राय यहां अभिप्रेत भी है। '**घनाघन**' में '**घन**' अर्थात् घनीभूत-रसात्मा श्रीकृष्ण, तथा '**अघन**' अर्थात् द्रवीभूत-रसात्मिका-श्रीकृष्णा, इस उभय-युगल का अद्भुत गाढ-संमिलन है। घनाघन का अर्थ है – परस्पर गुथा हुआ निविड़ि-मेघ-श्याम युगल-तत्त्व, जो अपनी ठंडी-ठंडी फुहार में, विश्व को-सचराचर को-अनुप्राणित कर रहा है। इस संदर्भ में, दिश-दिगन्त-विजयी श्री पुरुषोत्तमजी का यह मत कि '**घनाघननिभे**' यह विशेष्य है, विक्षेपण नहीं, धर्मी-स्वरूप है, धर्म स्वरूप नहीं-कितना यथार्थ है।!!!

'**ध्रुवपराशराभीष्टदे**'- इस विशेषण द्वारा, उभय पक्ष के '**श्री**' गुण का निरूपण किया गया है। ध्रुव तथा पराशर ने श्रीयमुना के तट समीप तपश्चर्या की थी। अपने इन प्रिय भक्तों को श्रीयमुना के तट पर ही प्रकट होकर प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक ऐश्वर्य, ज्ञान आदि अभिमत फल-दान द्वारा कृतकृत्य किये थे। जिनके

सेवक भी ऐश्वर्य तथा ज्ञान-सम्पन्नता का उपभोग करते हों, उनके स्वामी की '**श्री**'-वैभव की फिर परिसीमा ही क्या ? **श्रियो हि परमाकाष्ठा सेवकास्ता-दृशा** यदि। श्रीयमुना के समाश्रय में ही, उपरोक्त सेवकों को, स्व-अभीष्ट की प्राप्ति हुई। अतः यही विशेषण श्रीयमुना पक्ष में भी उपयुक्त होता है। श्री-पुरुषोत्तमजी के मत में, '**ध्रुवपराशराभीष्टदे**' पदमें '**यश**' का निरूपण है। मानव का दातृत्व-धर्म ही उसका '**यश**' है - दान में ही यश है - '**दातृत्वाद यशः**'। भगवान् के 'श्रीगुण' का निरूपण, श्रीमद्-आचार्य-चरणने, वेणु गीत के इस श्लोक में किया है -

प्रायो बताम्ब! विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षणास्तदुदितं कलवेणु-गीतम्।

आरुह्य ये द्रुमजान् रुचिर-प्रवालान्, शृण्वन्ति मीलित-दृशो विगतान्यवाचः।

'हे अंब ! हर्ष की बात है कि इस वन में बहुत से पक्षी वस्तुतः मुनि गण ही है, जो केवल कृष्ण की ही अभिलाषा किये हुये वृक्षों की नव-पल्लवित शाखाओं पर चढ़कर, नेत्रों को मूंदे, वाणी के सभी व्यापार को स्थगित करके भगवान् से परि-कूजित वेणु के मधुर गीत को सुन रहे हैं।'

जिस व्यक्ति के यहां वीणा-वादन होता हो वह '**श्री**' का उपभोग करने वाला कहा गया है। उपरोक्त श्लोक में अपने सेवक-पक्षीरूप मुनिगण-समक्ष स्वयं भगवान् वेणु-वादन कर रहे हैं !!! जब, सेवकों के '**श्री**' की यह महिमा है तो उनके स्वामी के '**श्री**' की क्या परिसीमा होगी ?

विशुद्ध-मथुरातटे-इस विशेषण में उभय-पक्ष के ज्ञान-रुप गुण का वर्णन है। मथुरा, जो सर्व दोषों से रहित किंवा विशुद्ध है, वह श्रीयमुना के तट से युक्त होने के कारण। इतना ही नहीं, यहां श्रीयमुना के कारण, मथुरा साक्षात् भगवद्-लीला-स्थली भी है। अतएव, लीलामय-भगवान् के निरंतर सान्निध्य से मथुरा भक्ति-भाव का दान करने लग गयी। उसने अपने मुक्ति-दातृत्व-स्वभाव पर विजय प्राप्त कर ली। मथुरा मुक्ति-दायिनी मानी जाती है, किन्तु, भगवत्-सान्निध्य से वह मुक्ति की जगह, भक्तिदायिनी हो गयी!!! ज्ञान द्वारा ही स्वभाव पर विजयप्राप्त होती है यही ज्ञानोत्कर्ष कहलाता है '**ज्ञानोत्कर्षस्तदेवस्यात् स्वभाव-विजयो आदि**'। विशुद्धत्व ज्ञान का कार्य है। ज्ञान में निर्मल बना देने की शक्ति है। भगवत्-सान्निध्य से, अथवा श्रीयमुना-सामीप्य से, मथुरा विशुद्ध-निष्पाप-बन गयी, तदनुसार, ज्ञानोत्कर्ष बढ़ा, परिणामतः स्वभाव पर विजय प्राप्त हुआ, मथुरा भक्ति का वितरण करने लगी।

ज्ञान द्वारा स्वभाव पर विजय का वर्णन वेणु-गीत में इस तरह है -

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्रवेगाः।

आलिंगिनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृहणन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः।।

'भगवान् के वेणु-गीत को सुनकर, आवर्तनों से लक्षित-काम-वेग से, नदियों की गति रुक गयी तथा अपनी तरंगरूपी भुजाओं से, कमलोपहार के समर्पणपूर्वक, मुरारी के, आलिंगनार्थ स्थिर किये गये चरणयुगल का, स्पर्श करने लगी।'

गति-वेग, नदियों का स्वभाव है, इसीलिये, उनको सरिता (सृ.गतौ) कहते है। यहाँ, नदियों ने अपने स्वाभाविक गति-वेग को, रति वेग में परिवर्तित करते हुए, स्तंभित कर दिया। **'स्तंभ'**, रति का सात्विक भाव है, इसलिये, **'गति-स्तंभ'**- वस्तुतः **'रति-वेग'** ही हुआ। स्वभाव विजय में ही, ज्ञान का उत्कर्ष है।

सकलगोपगोपीवृते - इस विशेषण से उभय-पक्ष का वैराग्य-गुण सूचित किया गया है। भगवान्, भक्त के अतिरिक्त, अन्य सभी पदार्थो से विरक्त कहे गये है। इसी कारण वह निरंतर भक्त-मंडली से घिरे हुये ही रहते। भक्त-मात्र में आसक्त भगवान् का यही वैराग्य गुण है। श्रीयमुना भी गोप-गोपी समाज से नित्य संबंलित रहती है। अपनी दुर्जर गेह-शृंखला को तोड़कर, इसीके पुलिन-निकट आ बैठी है, क्योंकि यहां ही तो उन्हें भगवद् लीलाओं की रसानुभूति उपलब्ध हुई है और होती रहेगी। इसलिये, उनको श्रीयमुना की संगति सर्वदा अभिलषित है। वे जानती है कि भगवान् में श्रीयमुना का निरुपाधिक-स्नेह है। भगवान् में, अपने इसी स्नेह के कारण, वह सतत सर्वात्मना, उनके ही सुख-संपादन में तत्पर रहती है। वह जानती है कि भगवान् का सुख निरंतर भक्त-संगति में ही निहित है - **'नाहमात्मान-माशासे मद्-भक्तैः साधुभिर्विना'**- भगवान् भक्तों के अभाव में संतप्त रहते है। भक्त-संग से रहित भगवान् अपने आपको शून्य मानते हैं। श्रीयमुना-तदनुसार भगवान् को, भक्तों की संगति उपलब्ध कराती है, तथा भक्तों को भी, उनके मानादि दोष की निवृत्तिपूर्वक, सर्वात्म-भाव से संपन्न करती हुई, भगवद्-सह-संबंधिता की योग्यता का, उनमें आधान करती है। इस तरह, भगवान् के भक्त-विरह-जन्य-संताप का शमन करती हुई, वह, उनकी प्रीति में प्रतिक्षण अभिवृद्धि की हेतु बनती है। श्रीयमुना, भगवद्-चरणों में स्वसुख के समर्पण पूर्वक, हरि के भी संताप को हरती है। हरि की प्रीति संपादन में ही श्रीयमुना के चरम-सुख की निष्पत्ति है। श्रीयमुना के वैराग्योत्कर्ष की यही महिमा है। श्रीमद्-आचार्य-चरणने वैराग्य की यह परिभाषा दी है।

'हरेश्चरणयोःप्रीतिः स्वसर्वस्वनिवेदनाद्-उत्कर्षश्चापि वैराग्ये हरेरपि हरिर्यदि'।। भगवान् के चरण युगल में, स्वसर्वस्व के समर्पणपूर्वक, प्रीति ही वैराग्य है और, सर्व प्राणियों के संतापहारक, स्वयं श्रीहरि के संताप का निवारण करने वाले जीव की, भगवद्-प्रति प्रीति, वैराग्य की परिसीमा!!! वेणु-गीत में वैराग्य-गुण इस तरह निरूपित हुआ है -

'दृष्ट्वातपे व्रजपशून् सहरामगोपैः, संचारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमः प्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः, सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाऽम्बुद आतपत्रम्।।'

'बलराम और गोपों के साथ, व्रज-पशुओं को चराते हुये एवं वंशी-नाद करते हुये, अपने सखा श्रीकृष्ण को धूप से क्लांत देखकर, स्नेहातिरेक से सजल-मेघ ने, जल की फुहाररूप-पुष्पदृष्टिपूर्वक, उनपर अपने शरीर को ही छत्ररूप में फैला दिया।!!!

यहां, आत्म-निवेदनपूर्वक श्याम-घन ने, घनश्याम के ताप का निवारण किया। सर्व के संताप-

निवारक श्रीकृष्ण के ताप का निवारण करने वाले मेघ का, अपने सुख के प्रति यह वैराग्य, कितना उत्कृष्ट है!!!

श्री पुरुषोत्तमजी के मतानुसार, उपरोक्त विशेषण (**सकलगोपगोपीवृते**) द्वारा, उभय-पक्षके '**श्री**' धर्म का निरूपण हुआ है। '**श्री**' आवरण से और भी अधिक प्रकाशित होती है। भागवत में इसका समर्थन मिलता है - 'गोपाङ्गनाओं की मंडली से घिरे, उनसे सत्कारित भगवान्, त्रैलोक्य लक्ष्मी के एक मात्र आश्रय-रूप वपु को धारण किये हुये, अत्यधिक दैदीप्यमान-प्रकाशित हो उठे।' गोपाङ्गगनाओं द्वारा आवृत्त होने से ही भगवान् में '**श्री**' प्रकाशित है। '**चकास गोपी परिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्यैकपदं वपुर्दधत्**'- इति तदावरणेनैव तत्प्रकाशात्- (श्री.पु.) गौरवर्ण गोपियों से समावृत्त होने पर ही, सांवरा श्याम, सलोना-लावण्यमय-बनता है - '**जा तनकी झांई परै श्याम हरित-दुति होय**'। शक्तिमान्, शक्तियों से ही सुशोभित होता है '**तत्राति शुशुभे ताभि र्भगवान् देवकी सुतः**'। यहां सकल गोप-गोपी-वृते पदके सकल में व्यंजना है। '**सकल**' पद श्रीयमुना की अनीर्ष्या-द्वेष राहित्य का सूचक तो है ही, तदुपरांत, उनके गुणातीतत्व का स्पष्टतया निर्देश भी करता है - '**सकलपदेनादऽनीर्ष्यादयोतनात् विवक्षितमपि गुणातीत्वं स्फोरितम्**'। सुबोधिनी में '**सर्वासामेकत्ररमणे मात्सर्यकृतो द्वेषो भवेत्**' ऐसा उल्लेख है। यहां '**सकल**' गोपीजन एकत्र रमणार्थ उपस्थित हैं - तथापि श्रीयमुना में मात्सर्य का अभाव ही है।

इस तरह, छहों विशेषणों द्वारा श्रीयमुना तथा भगवान् के षड्-विध-धर्मो का निरूपण करके, '**कृपाजलधि-संश्रियते**' पद द्वारा उभय के धर्मी-स्वरूप का दिग्दर्शन किया जाता है। यद्यपि भगवान् के उपरोक्त सभी धर्म नित्य अवश्य हैं, किन्तु नित्य-प्रकट नहीं है। लीला-प्रसंग में, जिस समय, जिस लीलोपयोगी धर्म की आवश्यकता होती है, उस समय, उसी धर्म का आविर्भाव किया जाता है। '**करुणा**' ही भगवान् का ऐसा धर्म है, जो नित्य प्रादुर्भूत रहता है। अतः करुणा ही भगवत्-स्वरूप है। '**कृपा-जलधि में संश्रित**' अर्थात् कृपा-समुद्र ने जिसका आश्रय लिया है ऐसे निरवधि-कृपामय-भगवान् - यह है '**कृपाजलधिसंश्रिते**' का अर्थ। अतः निरवधि-कृपामयता ही भगवान् का स्वरूप है। श्रीयमुना तो इस '**कृपाजलधि**' में, समुद्र में सरिता की तरह, समाश्रित है, एकरूप है, मिली हुयी हैं, और यही तो श्रीयमुना का स्वरूप है। भगवत्-समान धर्मो से समन्वित होने के कारण, श्रीयमुना सहज में ही जीव का, भगवत्-सह-संबंध स्थापित करा देती है। सामान्य-नदी में गिरा हुआ तृण भी यदि समुद्र में अनायास ही स्थिति कर लेता है, तो फिर, श्रीयमुना-समाश्रित जीव क्यों न '**कृपाजलधि**' से संबंध कर सकेगा।

श्री पुरुषोत्तमजी के मतानुसार '**कृपाजलधि-संश्रिते**' पद विशेष्य नहीं, विशेषण है - जिसमें उभय-पक्ष के '**वैराग्य**' गुण का उल्लेख हुआ है। विरागी ही कृपालु हो सकता है, रागी नहीं। राग में स्वार्थ-वृत्ति रहती है, अतः निंद्य है। 'अपने साधु भक्तों के बिना मुझे अपने में भी कोई अनुराग नहीं-

नाहमात्मानमाशासे मद्-भक्तैःसाधुभिर्विना-' भक्तों के बिना, भगवान् को स्वयं अपने प्रति वैराग्य ही रहता है। इसी कृपा-उदधि की आश्रिता होने के कारण, श्रीयमुना की भी यही प्रकृति है।

इस श्लोक में, श्रीयमुना के, '**भगवत्-समान-धर्मा**' होने के कारण, अनायास भगवत्-संबंध-संपादन रूप चतुर्थ-ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है।

श्री छीतस्वामी

जा मुखतें श्रीयमुने यह नाम आवे,
तापर कृपा करें श्रीवल्लभ प्रभु, सोई श्री यमुनाजी को भेद पावे।।
तन मन धन सब लाल गिरिधरन को, देके जब चरन चित्त लावे।।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल, नेनन प्रकट लीला दिखावे।।

।। श्री गंगामिश्रायै नमः ।।

यया चरण-पद्मजा मुररिपोः प्रियम्भावुका
समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम्।
तया सदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यद्
हरि-प्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम्।।५।।

(५)

यमुने ! तेरी ही संगति से, चरण-पद्मजा सुरसरिता-
बनी, स्व-सेवक-सकल-सिद्धिदा, पायी मुररिपुकी प्रियता।।
कब, कर सकी सपत्नी-पद्मा, तव समानता गुण-गुण में ?
हे कालिन्दी ! मुकुंद-वयस्ये !, बसिये नित मेरे मन में ।।५।।

अनुवाद - हे यमुने! आपके साथ समागमन से, भगवद्-चरण-कमल से उत्पन्न गंगा, श्रीमुरारि की प्रिय-पात्र बनी तथा उसमें स्व-सेवकों को, सकल-सिद्धियां प्रदान करने की सामर्थ्य आयी, अतः आपकी समानता में कौन आ सकता है ? आपकी समानता यदि कोई कर सकती है, तो कदाचित् आपकी सपत्नी-लक्ष्मी कर सकती है। पत्नीरूप में भी, आप ही भगवान् को प्रिय है। हरि-भक्तों के दोषों की निवारक, आप मेरे मन में निरंतर स्थिति करें-विराजमान रहें।।५।।

व्याख्या :- प्रथम चार श्लोकों से, श्रीयमुना की, उसके उत्कर्ष वर्णन द्वारा, स्तुति की गयी। किन्तु, श्रीयमुना के गुणों का उत्कर्ष इतना अनन्त और विलक्षण है कि उसको वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता, तथापि, उसके यत्किंचित् दिग्दर्शन का प्रयत्न प्रस्तुत पाचवें श्लोक से किया जाता है। श्रीयमुना के इस विलक्षण उत्कर्ष की यह विशेषता है कि वह अपने समागम में आने वाले भगवदीयों की महिमा में भी अभिवृद्धि करती है। भगवदीयों का उत्कर्ष वैसे ही उत्तम होता है, किन्तु इनके इस उत्कर्ष को भी ऊँचा लाने वाली श्रीयमुना के माहात्म्य को कौन समझ सका है ?

लक्ष्मी, गंगा, सरस्वती, तुलसी-ये सभी भगवदीय है। लक्ष्मी, पद्म से, गंगा तथा तुलसी, भगवान् के पाद-पद्म से तथा सरस्वती, मुख-पद्म से उत्पन्न हुई हैं। सभी भगवान् से संबंधित अतएव भगवदीय है। इनका उत्कर्ष विश्व-विश्रुत है तथापि श्रीयमुना की तुलना में इनका कोई महत्त्व नहीं।

गंगा को ही लें, भगवद्-पाद-पद्म से प्रस्रवित गंगा, वस्तुतः भगवदीय है। भगवान् के चरण-कमल, निर्दोष-पूर्ण-गुणो से समन्वित अतएव स्वयं भक्ति स्वरूप है। इन्हीं गुणों का संक्रमण गंगा में भी हुआ है। कारण के गुण, कार्य में आते है। भगवद्-चरण कारण है, गंगा कार्य-'**कारणगुणाः कार्यगुणानामारंभकाः**'। इसीलिये, गंगा भी निर्दोष-पूर्ण-गुण-समन्वित तथा भक्ति-रूपा है। इसके उत्कर्ष का वर्णन इतिहास, पुराण, काव्य आदि में विपुल रूप में किया गया है। गंगा का यह उत्कर्ष, श्रीयमुना समागम से हुआ, उसके पूर्व का था। गंगा के उत्कर्ष में जो कुछ भी विलक्षणता आयी वह

श्रीयमुना की संगति के अनन्तर। श्रुति में, गंगा के, श्रीयमुना-संगति-जनित, इसी गौरव का वर्णन किया गया है - 'जहां, श्वेत-वर्णा-गंगा का, श्याम-स्वरूपा-यमुना से संगम होता है, वहां स्नान करने वाले स्वर्ग सुख को तथा देह त्यागने वाले को अमृत्व की प्राप्ति सुनिश्चित है-' **सितासिते यत्र सङ्गते तत्रोऽश्नुतासो दिवमुत्पतन्ति, ये वै तन्वां विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृत्वं भजन्ते।** अर्थात्, गंगा में, स्व-सेवक को सकल-सिद्धियों के दान की सामर्थ्य, श्रीयमुना-सह सङ्गमोत्तर काल में ही आयी।

वस्तुतः चरण-प्रक्षालित-जल रूप होने के कारण, श्रीयमुना-सह समागम के पूर्व, गंगा के प्रति, भगवान् में, प्रिय-भाव नहीं था। भगवान् की प्रिय-भाजन तो वह तब बनी, जब श्रीयमुना से उसका समागमन हुआ। **प्रियम्भावुकाऽभवत्-'अप्रिया, प्रिया संपन्ना'**- (श्री.पु.) अर्थात्, गंगा, जो भगवान् को अप्रिय थी, श्रीयमुना-संगति से, प्रिय हो गयी। अपने संपर्क में आयी हुई गंगा को, श्रीयमुना ने स्व-समान गुणों से संपन्न करते हुये, भगवद्-प्रिय-पात्र बना दिया। परिणामतः, भगवान् के मात्र एक ही अंग से अर्थात् चरण से संबंध रखती हुई भी, भक्ति-मार्गीया-गंगा, श्रीमुरारि की प्रीति-वाहिनी हो गई, उन मुरारिकी, जो भक्त के, स्व-प्राप्ति में उपस्थित अंतरायों को हटाकर, उसके संताप का शमन कर देते हैं। इतना ही नहीं, श्रीयमुना-संगति से, गंगा में भी स्व-सेवक को सकल-सिद्धियों से, तथा सेवोपयोगी-देहादि से संपन्न करने की सामर्थ्य भी आ गयी। जो जिससे आविष्ट होता है, वह, उसी की कृति का, स्वभाव का, अनुकरण करता है, जैसे भगवान् से आविष्ट-भक्त। श्रीयमुना से आविष्ट-गंगा अपनी समग्र चेष्टाओं में, श्रीयमुनामय हो गयी। यह है, श्रीयमुना के माहात्म्य की चमत्कृति!!! श्रीयमुना के उत्कर्ष का यह कथन केवल वाक्-विलास मात्र नहीं है, अनुभवपूर्वक किया गया है। श्री हरिरायजी ने इस संदर्भ में यह कहा है - '**अयमुत्कर्षः स्वानुभवेनोक्तः।**' इस उक्ति की निगूढ़ता, केवल भगवदीय-गम्य है, और भगवदीय के लिये ही, अनुग्रह पूर्वक, पू. चरण श्री हरिरायजी ने प्रकाशित की है। अपने संपर्क में आने वाले को स्व-समान गुणों से संपन्न कर देने का अचिंत्य-उत्कर्ष, श्रीयमुना में ही है। श्रीयमुना का भगवान् से जो संबंध है, वह उनके एक एक रोम से, उनके अंग-अंग से संबंध है। श्रीयमुना के माहात्म्य की विलक्षणता का यही तो निगूढ़ रहस्य है !!!

श्रीयमुना की इस विलक्षणता में उसका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं। इस प्रकार की, ऐसी श्री यमुना की समकक्षता में आने वाली यदि कोई है तो वह उनकी सपत्नी-अर्थात् समान-सौभाग्य-शालिनी लक्ष्मी अर्थात् पद्मजा। लक्ष्मी, पद्म से उत्पन्न हुई है- 'जब, भगवान् ने आदित्य-सूर्य का रूप धारण किया तब लक्ष्मी पद्म से उत्पन्न हुई- '**पुनश्चः पद्मात् उद्भूता, आदित्योऽभूत् यदा हरिः**' इन्द्र की स्तुति में भी इसी का समर्थन किया गया है - सर्व प्राणियों की जननी कमल से उत्पन्न हे लक्ष्मी ! आपको नमस्कार हो।''' **नमस्ते सर्व भूतानां जननी मब्जसंभवाम्**' लक्ष्मी, भगवान् की पत्नी होने के कारण, श्रीयमुना की सपत्नी-समान सौभाग्यास्पदा-अवश्य है, किन्तु, उसका पुष्टिमार्गीय-लीला से कदापि संबंध नहीं है। तदुपरांत, लक्ष्मी में, श्रीयमुना के भक्तानुगुणत्व धर्म का सर्वथा अभाव है। लक्ष्मी, भगवद्-पत्नी अवश्य है, किन्तु, प्रिय नहीं। लक्ष्मी का, भगवान् से न तो पुष्टि-मार्गीय लीला-सुलभ

संबंध है, न ही लीलास्थ-भक्तों को स्वानुभूत-स्वभोग्य-फलदान करने की उदारता। स्व-भक्तों के कलि-सुलभ दोषों को निवृत्त करने की बात तो दूर, लक्ष्मी, उनको, कलि-पाशों से अधिकाधिक उलझाकर, भ्रांत ही करती रहती है। भक्तों के दोष निवर्तन की क्षमता तो उसी में हो सकती है जो हरि को प्रिय हो। श्रीयमुना ही हरि की प्रिया है, क्योंकि वही हरि के प्रिय भक्तों को, कलि-सुलभ दोषों से, मुक्त करने वाली है-इसीलिये तो आप **'कालिन्दी'** कहलाती है। दोषों से रहित, निर्दुष्ट-भक्त-वृंद, भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। **'नाहमात्मान माशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।'** भगवान् के इसी प्रिय कार्य को श्रीयमुना नित्य संपादित करती रहती है। श्रीयमुना इसी कार्य में नित्य-जागरूक, अत एव, श्री हरि की 'अतिप्रिया' है। तदुपरांत, श्रीयमुना की यह और ही महिमा है-वह गुणातीत मानी जाती है। वह त्रिगुणात्मक भावों से अतीत, अतः गुणातीत है। अपने इसी गुणातीत्व गुण से श्रीयमुना, भगवद्-भार्याओं की पारस्परिक-द्वेष-आदि दुर्भावनाओं को दूर करती रहती है। ये सभी पत्नियां, लक्ष्मी की अंश अतएव लक्ष्मी से आविष्ट होने के कारण, लक्ष्मी-समान अनिष्ट प्रकृति वाली है। इस प्रकार की प्रकृति पर विजय-प्राप्त कराने वाली साक्षात् गुणातीत ही होनी चाहिये और वह है श्रीयमुना। अपने इसी गुणातीत-स्वरूप के कारण, श्रीयमुना, भगवान् की प्रिय-पात्र है। श्रीयमुना भगवान् को जो प्रिय है, उसके बहुत से हेतु हैं, किन्तु आपका गुणातीत्व धर्म, प्रिय बनाने वाले सभी कारणों का बीज-भूत है। गुणातीत्व ही प्रियत्व का बीज-भूत है। **गुणातीतत्वं प्रियत्वबीजभूतम्- (श्री.पु.)**

मनसि में सदा स्यीयताम्- अतः, आपके समान आप ही हैं, अन्य कोई भी आपकी समानता में नहीं आता। आप भक्तानुगुणा है, अतः प्रार्थना है कि आप मेरे मन में सर्वदा स्थिति करें। आपकी स्थिति से ही मेरे मन में शुद्धता आयेगी, मन ही सर्व-इन्द्रियों का प्रेरक है - **'मनो हि हेतु सर्वेषामिद्रियाणां प्रवर्तने'**- अतः मनः शुद्धि से ही समग्र इन्द्रियां स्वतः निर्दुष्ट-निष्पाप-हो जायेंगी। मन ही भावों का भी अधिष्ठान है। अतः मन में आपकी **'सदा'** स्थिति से, भावाभिशुद्धि होने पर लीला-प्रवेश सुख साध्य है। (श्री.द्वा.)

इस श्लोक में श्रीयमुना के, भगवद्-प्रिय भक्त के कलि-सुलभ दोष निवारण रूप पंचम, ऐश्वर्य का वर्णन किया है।।५।।

श्री परमानंद दास

कालिन्दी कलिकल्मष हरनी,

रवि-तनया, यम-अनुजा श्यामा महासुंदरी गोविंद घरनी।
जय जमुने ! जय कृष्ण-वल्लभे ! पतितन को पावन भव-तरनी।।
शरणागत को देत अभय-पद, जननी तजत जैसे सुत की करनी।
शीतल, मंद, सुगंध सुधानिधि, धायि धरि वपु उतरी धरनी।
परमानंद प्रभु परम-पावनी युग युग साख निगम नित बरनी।।

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यम-यातना भवति ते पयःपानतः।
यमोऽपि भगिनीसुतान्कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः।।६।।

(६)

तव-चरित्र अति अद्भुत यमुने ! करता तुमें सदैव प्रणाम।
निश्चय तेरे पयः पान से, कभी न यम से भय का काम।।
भले पपित हों, भगिनीसुत से, निर्दय हो यम भी कैसे ?
तव सेवन से, प्रिय हो जाता हरिका, गोपीजन जैसे।।

अनुवाद - हे श्रीयमुने! आपको निरंतर नमस्कार हो! आपका चरित्र अति अद्भुत है। क्योंकि आपके पयःपान से यम-यातना कभी नहीं होती, और स्वयं यमराज भी, अपनी बहिन के पुत्रों की, चाहें वे कितने ही दुष्ट क्यों न हों, कदापि हिंसा नहीं कर सकता! आपकी सेवा करने से जीव, गोपीजनों के समान, श्री हरिका प्रिय हो जाता है।।६।।

व्याख्या - **'नमोऽस्तु'** - भक्तों के उत्कर्ष की साधिका तथा उनको स्वानुरूप गुणों से संपन्न करने वाली श्रीयमुना, जीव-मात्र की उपकारक है। श्रीयमुना का प्रत्युपकार असंभव है। अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये यदि वह **'नमन'** भी करना चाहे तो **'नमन'** भी दुर्लभ है। जीव का ऐसा सौभाग्य कहां कि वह श्रीयमुना को नमन कर सके। नमन तभी संभव है, जब, जिसको नमन किया जाये, उसके माहात्म्य का ज्ञान हो। भगवान् को अवश्य नमन किया जा सकता है क्योंकि उनका माहात्म्य शास्त्रों से सिद्ध है। श्रीयमुना का माहात्म्य समझना जीव के लिये असंभव है। लीला-सृष्टि में प्रवेश प्राप्त होने के उपरांत, तदनुकूल भाव-संपदा से संपन्न होने पर ही श्रीयमुना की महिमा कुछ समझ में आ सकती है। भगवद्-कृपा से जब तक जीव, श्रीयमुना में श्रद्धोपेत नहीं हो जाता, तब तक नमन करने की योग्यता ही कैसी ? अतः श्रीयमुना को नमन दुर्लभ है। यहां, नमन-रूप दुर्लभ-सौभाग्य की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की गयी है **'नमोऽस्तु'**- यहां **'अस्तु'** प्रार्थना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है **'त्वयि नमनमपि दुर्लभं-अतः प्रार्थ्यते'**।

तव चरित्रमत्यद्भुतम्- भगवान् का चरित्र अद्भुत है - **'कृष्णायाद्भुतकर्मणे'** किन्तु श्रीयमुना का अति-अद्भुत!!! असाधन को भी साधन बना देने की जिसमें शक्ति हो वही अद्भुत कहलाता है। गोपीजनों ने काम भाव से भगवद्-भावना की। काम, भगवद्-प्राप्ति का कदापि साधन नहीं माना गया। काम, भगवद्-

।। श्री कालिन्द्यै नमः ।।

उपलब्धि में असाधन ही है। किन्तु, व्रज-सुंदरी-वृंद ने इसी अ-साधनात्मक काम द्वारा भगवान् को प्राप्त किया। क्योंकि, इनकी काम-भावना का विषय भगवान् थे। अतः, यह काम-भावना ही, भगवद्-प्राप्ति का हेतु-साधन-बन-गया। गोपीजनों में, काम-रूप से स्वप्रवेश द्वारा-**विषयत्वेन स्वप्रवेशात्**-भगवान ने असाधन रूप काम को ही स्वप्राप्ति का साधन बना दिया। इसीलिये **गोप्यः कामात्** गोपियों ने काम से भगवान् को प्राप्त किया-इस तरह के वाक्य मिलते हैं। यह है अद्‌भुत शब्द का निर्वचन।

किन्तु, श्रीयमुना का चरित्र इससे भी अधिक अर्थात् अति-अद्‌भुत है। यहाँ तो श्रीयमुना के पयः पान मात्र से फल सिद्धि मिल जाती है। माहात्म्य-ज्ञान अथवा भावना की यहां कोई आवश्यकता नहीं। अर्थात् इनके अभाव में भी, केवल पिपासा शमनार्थ किया गया श्रीयमुना का पयःपान यदि यम-यातना की निवृत्ति का हेतु बन जाता हो तो वह श्रीयमुना का अति-अद्‌भुत ही चरित्र कहलायेगा। प्यास लगने पर, श्रीयमुना का जल-पान, उनके माहात्म्य-ज्ञान पूर्वक अथवा भावना-सहित कभी नहीं किया जाता। प्यास लगने पर जल-पान केवल पिपासा शमनार्थ ही किया जाता है। केवल तृषा की शांति के लिये किया गया श्रीयमुना का पयः-पान, यमराज की यातना से मुक्त कर देता है!!! यही श्रीयमुना की अति अद्‌भुतता है। यहाँ यह कहा जा सकता है इसमें श्री यमुना की ही क्या विशेषता हुई ? भगवद्-नामोच्चारण द्वारा भी यम-यातना से मुक्ति मिल जाती है ? किन्तु, नामोच्चारण में अमुक नियमों का बंधन है। अमुक नियम पूर्वक ही किया गया नामोच्चारण फल सिद्धि में उपकारक माना गया है। नामोच्चारण में कभी अपराध हो जाने पर, यदि गुरु-कृपा तथा सत्संग-इन दोनों का अभाव हो तो, वह निष्फल हो जाता है। श्रीयमुना के जल-पान में किसी नियम का कोई बंधन नहीं। यहां प्यास लगने पर जल पान करते समय कोई अपराध का भय नहीं, गुरु-कृपा तथा सत्संग इन दोनों की अपेक्षा नहीं। इन दोनों अङ्गों के अभाव में भी, केवल तृषा-शमनार्थ श्रीयमुना का पयः-पान, यम-यातना का निकंदन कर देता है। श्रीयमुना की यही महती चमत्कृति है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि जल-पान-मात्र से यम-यातना से मुक्ति की उक्ति में क्या प्रमाण ? यह एक असंगत सा कथन है। लोक में भी पिपासा शांत्यर्थ पयःपान यम-यातना के अभाव में हेतु बना हो, ऐसा देखने में नहीं आता। इसका समाधान यह है कि श्रीयमुना यम की अनुजा-सूर्य की तनूजा-है। यम-जन्म के पश्चात् यम-सुलभ-दोषों के परिहरणार्थ, सूर्य ने श्रीयमुना को उत्पन्न किया। अतः श्रीयमुना, अपने भ्राता यम से सम्मानित है। श्रीयमुना का पयः-पान करने वाले निःसंदेह श्रीयमुना के पुत्र ही कहे जायेंगे। श्रीयमुना के ये पुत्र, यम के भागिनेय अतः उसके पूज्य है। ये भागिनेय भले सदोष हों, यम उन्हें भूल कर भी यातना नहीं देगा, उनकी स्वप्न में भी हिंसा नहीं करेगा।

इस तरह, तर्क द्वारा श्रीयमुना का उपरोक्त माहात्म्य सिद्ध किया गया। अब, शास्त्र का प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है। यमुना-माहात्म्य में श्रीयमुना के प्रति यम के एक कथन का उल्लेख मिलता है। जिसमें यम, श्रीयमुना को अनुनयपूर्वक कहता है कि आपकी जीवोद्धार प्रकृति से मैं परिचित हूँ। आपके जल-पान मात्र से, आप जीव को भय से मुक्त कर देती है, तथापि में प्रकृतितः निर्दयी हूँ। जीव-हिंसा मुझे कर्त्तव्य-

रूपेण सुपुर्द की गयी है। अतः मेरी प्रकृति को देखते हुये, मेरे कर्तव्य की रक्षा का भी आपको कोई उपाय सोचना चाहिये। प्रत्युत्तर में श्रीयमुना ने निर्णय देते हुए कहा कि मेरे जल में स्नानपूर्वक, तुमारे चौदह बार नामोच्चारण से तर्पण करने वाला प्राणी, तुम्हारे पाश से मुक्त रहेगा, और तुम हिंसक-प्रकृति होते हुये भी घृतकल्प-मृदुरूप ही रहोगे अर्थात् आयुप्रद कहलाओगे। शास्त्र के इन अवतरणों से भी, श्रीयमुना के उपरोक्त माहात्म्य की स्वतः प्रीति होती है।

यहाँ तक, श्रीयमुना के जीवोद्धारक रूप-अद्‌भुत-चरित्र का निरूपण हुआ। अब, यहाँ से, फलसिद्धि के दान में भी, श्रीयमुना के चरित्र की अद्‌भुतता का प्रतिपादन किया जाता है। श्रीयमुना में जीव को भगवद् प्रीति का पात्र बना देने की जो सामर्थ्य है, वह वस्तुतः विलक्षण है। क्योंकि, ज्ञान तथा भाव दोनों से शून्य, मात्र रसना और वासना का दास, जन्म-मरण के प्रवाह में पतित, अविद्या से ग्रस्त सदोष जीव कहा ? और कहाँ निर्दोष-पूर्ण-विग्रह भगवान्!!! सदोष में, निर्दोष की प्रीति असंभव है। तथापि, यदि यह जीव, श्रीयमुना की अनन्य सेवा पूर्वक उनको अपना चित्त समर्पित करके, उनका ही हो जाता है, तो वह सर्व दुःखों के निवारक श्रीहरि की प्रियता प्राप्त कर लेता है। यहाँ यह अभिप्राय है कि सेवा की जाती है श्रीयमुना की, किन्तु उस सेवा से सुख मिलता है श्रीहरि को। सेवा की जाती है एक की, किन्तु सेवा सुलभ विश्रांति मिलती है अन्य को!!! इसका दृष्टांत भागवत में मिलता है। रास-लीला के समय, जब भगवान् अंतर्धान हो गये तब उनके विरह से परितप्त गोप-रमणियों ने श्रीयमुना के ही रम्य-पुलिन का आश्रय लिया था। तभी तो उनका भगवद्-प्राप्ति रूप, भगवद्-प्रियत्वरूप-मनोरथ सिद्ध हुआ था '**मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः**'। तदुपरान्त, कात्यायनी-व्रत-विधि में, कुमारिकाओं ने, श्रीयमुना की सेवना द्वारा ही भगवद्-रति रूप फल की प्राप्ति की थी। अतः, जिस तरह, गोपललनायें, श्रीयमुना की सेवा से भगवद्-प्रियता का पात्र बन गयीं, उसी तरह, अन्य जीव भी-सदोष होते हुये भी-श्रीयमुना की सेवा द्वारा, भगवद् प्रीति से सम्पन्न बन सकता है तो उनके चरित्र की अद्‌भुतता में विचिकित्सा ही कैसी ?

प्रस्तुत श्लोक से, भगवदीय के उत्कर्ष में अभिवृद्धि करने की सामर्थ्य रूप श्री यमुना के षष्ठ-ऐश्वर्य का निरूपण किया गया है। यह श्रीहरिराय जी का मत है। श्री पुरुषोत्तमजी के अभिप्रायानुसार, श्रीयमुना का स्व-सेवक के लिये, गोपिकावत् भगवद्-प्रियत्व-संपादनरूप यह षष्ठ ऐश्वर्य है।।६।।

श्रीसूरदास

भक्तकों सुगम श्री यमुने, अगम ओरें,
प्रातही न्हात अघ जात ताके सकल, जमहुं रहत ताही हाथ जोरे।।
अनुभवी बिना, अनुभव कहा ह्वे जानही, जाको पिया नहि चित चोरे।।
प्रेम के सिंधु को मरम जान्यो नहि, सूर कहे, कहा भयो देह बोरे।।

।। श्री प्रीत्यै नमः ।।

-७-

ममाऽस्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्द-प्रिये।
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं सङ्गमात्
तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः ।।७।।

(७)

हे मुकंद-प्रियतमे ! निकट तव देह-नवत्व सिद्धि पाऊं।
जिससे, श्रीमुररिपु में अपनी, सहज सुलभ-रति बिकसाऊँ।।
स्वीकृत-हो स्तुति-रूप लालना, तेरी ही संगति पाकर।
पुष्टि-सृष्टि से अस्तुत सुरसरि, संस्तुत हुई धरातल पर।।

अनुवादः- हे मुकुन्द प्रिये! आपके सान्निध्य में मेरी देह, नवत्व को प्राप्त हो (लीलोपयोगी बने), क्योंकि, तनुनवत्व से, भगवान् श्रीमुरारि में प्रीति की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ नहीं है (वस्तुतः आपकी कृपा से सब कुछ सुलभ है)। अतः, वर्तमान स्थिति में, जब तक लीलोपयोगी देह की प्राप्ति न हो, तब तक आपकी स्तुति करने में सर्वथा असमर्थ मेरे द्वारा, प्रेमातिशय-पूर्वक की गयी आपकी गुण-संकीर्तन रूप यह लालना (स्नेहोद्‌गार) ही स्तुति रूप में स्वीकार हो। गंगा का, इस लोक में, गुण-संकीर्तन केवल आप ही के समागमन के अनन्तर होने लगा। आपके संबंध से रहित, अकेली गंगा, पुष्टिस्थ जीवों द्वारा कदापि कीर्तित नहीं हुई।।७।।

व्याख्याः- गत श्लोक से श्रीयमुना के स्वरूप-सामर्थ्य का स-प्रमाण प्रतिपादन करके, अब, प्रस्तुत श्लोक द्वारा, भगवान् के प्रिय-भाजन होने में जो गुण उपयोगी एवं वांच्छनीय है उनका निरूपण किया गया है।

ममाऽस्तु तव सन्निधौ तनु-नवत्वम्- श्री यमुना के तट समीप निवास करने वाला जीव, देह के स्नान, पान आदि अपनी आवश्यक धर्मो की निवृत्ति के आग्रह से भी, उनके जल का सेवन करता हुआ- यदि मुक्ति से भी अधिक भगवद्-प्रीति रूप भक्ति की प्राप्ति कर सकता है, तो फिर यम-यातना की गंध भी कहा। वस्तुतः, श्रीयमुना से किसी भी रूप में संबंध साधने से जीव कृतार्थ हो जाता है। श्रीयमुना के अधिभौतिक स्वरूप के समीप स्थिति करने मात्र से जब अलभ्य सौभाग्य की उपलब्धि सुनिश्चित है तो उनके आधिदैविक-स्वरूप-सन्निधि में लीलोपयोगी नूतन-देह सिद्धि-रूप संपदा से संपन्नता नितांत सहज है। अतः, इसी की याचना की गयी है - **'ममाऽएस्तु तव सन्निधौ तनु-नवत्वम्'** हे यमुने! आपके सामीप्य में मेरी देह नूतन हो। तनु-नवत्व का अर्थ श्रीहरिरायजी तथा श्री पुरुषोत्तमजी ने अपने-अपने

दृष्टिकोण से किया है जो सारांश में एक दूसरे से प्रायः अविरुद्ध है।

श्रीपुरुषोत्तमजी के अनुसार, तनु-नवत्व का अर्थ इसी देह में अलौकिक-धर्मो के आविर्भाव मात्र से नहीं है। किन्तु इस देह की निवृत्ति के अनन्तर, स्वाभिलषित लीलोपयोगी नूतन-देहान्तर की प्राप्ति-पर्यन्त-स्थिति के अर्थ में **'तनु-नवत्व'** का प्रयोग हुआ है। यहाँ, लीलोपयोगी नूतन-देह की प्राप्ति के कथन से, वर्तमान शरीर का नाश स्वतः सूचित हो जाता है अर्थात् इस शरीर की निवृत्ति के अनन्तर ही लीलोपयोगी नूतन-शरीर की प्राप्ति हो सकती है। यहाँ यह शंका होती है कि तनु-नवत्व के इस अर्थ में, दो अवस्थाओं का कक्षाओं का निर्देश किया गया है- प्रथम, इस देह की निवृत्ति, द्वितीय अभीष्ट-देहान्तर की प्राप्ति। ऐसी स्थिति में, इसी देह को नूतन बना देने की , एक ही याचना से यदि मनोरथ सिद्ध हो जाता हो तो दोनों कक्षाओं की याचना से क्या प्रयोजन? श्री पुरुषोत्तमजी का कहना है कि इसी शरीर को अलौकिक धर्मो से सम्पन्न कर देने की याचना से तो 'भगवद्-रति' अवश्य सुलभ हो जाती है, किन्तु, लीलानुभूति नहीं। **तनु नवत्व मेतावता न दुर्लभतमा रति र्मुररिपौ** अर्थात् इस प्रकार की याचना से, शरीर अलौकिक धर्मो से अवश्य सम्पन्न हो जायेगा, और इतने से (एतावता) श्रीमुरारि में, केवल रति की प्राप्ति ही सुलभ होगी **(न दुर्लभतमा)**, किन्तु लीलानुभूति तो दुर्लभ रहेगी। अतः, इस एकही अवस्था-कक्षा की याचना नहीं की गयी।

श्रीहरिरायजी तथा श्री द्वारकेशजी उपरोक्त अर्थ से सहमत नहीं। उनका कथन यह है कि यदि श्रीमद्-आचार्य-चरण को यह अर्थ अभिप्रेत होता तो तनु-नवत्व की जगह नव-तनुत्व पद का प्रयोग करते। तनु-नवत्व से, इसी शरीर के नवत्व की प्रार्थना की गयी है, नूतन-शरीरान्तर की नहीं। श्री गोकुलनाथजी ने अपनी विवृति में जो लिखा है कि **एतेन पूर्वदेहनिवृत्तिः** सूचिता वहां निवृत्ति का अभिप्राय पूर्वदेह के नाश से नहीं है - **नितरां वर्तनम् निवृत्ति, सत्ता सूचिता,** नतु नाशः देह का नाश नहीं है, देह रहता है, किन्तु उसमें, लौकिक धर्मो के लोप-पूर्वक, अलौकिक धर्मो का आविर्भाव होता है। अर्थात् तनु-नवत्व में, शरीर की सत्ता रहती है में जो लिखा है कि '**एतेन पूर्वदेहनिवृत्तिः** सूचिता' वहां निवृत्ति का अभिप्राय पूर्वदेह के नाश से नहीं है - नितरां वर्तनम् निवृत्तिः, सत्ता सूचिता, नतु नाशः देह का नाश नहीं है, देह रहता है, किन्तु उसमें, लौकिक धर्मो के लोप-पूर्वक, अलौकिक धर्मो का आविर्भाव होता है। अर्थात् तनु-नवत्व में, शरीर की सत्ता रहती है, किन्तु, उसमें से लौकिकत्व की निवृत्ति हो जाती है और अलौकिकत्व का उदय। मिट्टी के कच्चे घट में, जल के धारण करने की सामर्थ्य नहीं होती, किन्तु वही अग्नि द्वारा अपनी परिपक्व अवस्था में, जल आदि धारण की सामर्थ्य से सम्पन्न हो जाता है। कच्चे तथा परिपक्व, दोनों घड़ों में वही मिट्टी है, केवल नाम की निवृत्ति होती है। एक में मिट्टी कच्चे स्वरूप वाली है दूसरे में पक्व रूपवाली। मिट्टी में पक्वत्व गुण के आधान से एक विशिष्ट सामर्थ्य आ जाती है, जिसका कच्ची मिट्टी में एकांत अभाव था। इस उदाहरण से, तनु-नवत्व का अर्थ हुआ, इसी शरीर में धर्मान्तरता का आविर्भाव। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों पक्ष तनु-नवत्व में दो कक्षायें स्वीकार करते

हैं, और इन दोनों कक्षाओं में से एक कक्षा की विश्रांति। अतः परस्पर कोई विरोध नहीं है, तदपि **पूर्वकक्षाविश्रान्तमिति** न विरोधः (श्री.पु.)।

वस्तुतः देखा जाये तो, जीव-गत अविद्या की निवृत्ति ही '**तनु-नवत्व**' की स्थिति कहलाती है। देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अंतःकरणाध्यास आदि अध्यास जन्य दोषों की उपरति के अनन्तर ही गोपों की लीलानुभूति हुई। ये दोष ही देह के नियत धर्म है। देह के साथ ही रहने वाले धर्म, नियत धर्म कहलाते हैं। यहाँ, गोपों की देह के ये दोष रूप नियत-धर्म निवृत्त हो चुके थे-तथापि देह का नाश नहीं हुआ था। गोपों के देह रहे किन्तु अविद्या-जन्य-दोष नष्ट हो गये। यहां तनु नवत्व से यही अभिप्राय है।

इस तरह श्रीयमुना से संबंध के पूर्व, पुष्टि-मार्गीय-लीला के जीवों में, भगवद्-लीला के दर्शनादि की सामर्थ्य का अभाव रहता है, किन्तु श्रीयमुना से संबंध होने के उपरांत, उनकी कृपा से तनु-नवत्व की प्राप्ति पूर्वक, लीला के दर्शनादि की, उसकी अनुभूति की सामर्थ्य उनमें आजाती है, शरीर में से लौकिकत्व की निवृत्ति हो जाती है। इस प्रकार, लौकिकत्व की जब तक निवृत्ति नहीं होती, तब तक जीव के लिये, भगवान् की आवरण-अनाच्छन्न-प्रत्यक्ष लीला का दर्शन असम्भव है। देह के नूतन होने पर, वह नित्य, लीलास्थल में उपस्थित, भक्त-वृंद सहित, भगवान् के अरुण-नेत्रवाले प्रसन्न मुख का, सुंदर अलंकारों से विभूषित अभीष्ट वर देने वाले उनके अनेकविध दिव्य-स्वरूपों का दर्शन तथा उनके साथ मधुर वाणी में संभाषण करता है :-

पश्यन्ति ते मे रुचिरावतंसप्रसन्न-वक्त्रारुणलोचनानि।

रुपाणि दिव्यानि वरप्रदानि, साकं वाचं स्पृहणीयं वदन्तिः।।

सामान्य जीवों को भी अलौकिक-सामर्थ्य-रूप फल से उपकृत करने वाली श्रीयमुना की कृपा ही दुर्लभ है। कृपा-समावेत-जीव के लिये कुछ भी '**दुर्लभतम**' नहीं अर्थात् परम-दुर्लभ भी सहज-सुलभ है। श्रीमुरारि में प्रीति ही परम दुर्लभ कही जाती है किन्तु, श्रीयमुना द्वारा वही सहज सुलभ हो जाती है न **दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ।**

मुररिपौ-कदाचित्, प्रारब्ध दोषों के संचयसे अथवा भगवदीयों के प्रति प्रज्ञापराध के कारण, भगवान् के साथ संबंध संपादन में अन्तराय उपस्थित हो जायें, तथापि भगवान् मुररिपु हैं। नरकासुर द्वारा निरुद्ध कन्याओं के स्व-प्राप्ति में विघ्न-रूप मुरदैत्य के विनाशक है। अतः श्रीयमुना से संबंधित जीव-मात्र के प्रतिबंधों का समुन्मूलन वह स्वयं कर देते हैं। श्रीयमुना के समीप-संनिधान की यह चमत्कृत फल-श्रुति है। अतः, श्रीयमुना के सेवक, भगवद्-रति-प्राप्ति में उपस्थित अंतरायों के निराकरण में उपेक्षित ही रहते है।

मुकुंद-प्रिये - भगवान् मोक्ष दाता हैं-इसीलिये वे मुकुन्द कहलाते हैं। इस तरह, यद्यपि भगवान् की मोक्ष-दातृत्व ही एकांत-प्रकृति है, तथापि श्रीयमुना उनकी प्रिया हैं। अतः, श्रीयमुना के अनुरोध से,

उनके सेवकों को, भक्ति देने के लिये, भगवान् बाध्य हो जाते हैं। प्रिय के अनुरोध से कोई क्या नहीं कर सकता ? अत: श्रीयमुना कृपास्पद-सेवक को, भगवद्-रति रूप सौभाग्य-प्राप्ति में, न तो कोई प्रतिबंध है और न ही कोई विलंब-**पुष्टौ नैव विलंबयेत्**-और न कोई अपराध-**यतोऽपराधस्तत एव मुक्तिः**।

अतोऽस्तु तव लालना- तनु-नवत्व रूप संपदा से संपन्न करने वाली तथा भगवदीयत्व की एक-मात्र संपादिका अतएव '**स्वतंत्र-भक्ति**' के दान में समर्थ श्री यमुना की कृपा से ही सर्व-सुलभता है। इसी कारण, 'यद्यपि में अलौकिक-धर्मो से सर्वथा शून्य हूँ, तथापि वर्तमान स्थिति में अर्थात् जब तक मेरी इस देह की निवृत्ति न हो तब तक, आपकी प्रेमातिशयपूर्वक की गयी इस गुण संकीर्तन रूप लालना को ही आप मेरी और से स्तुति-रूप में स्वीकार करें। माहात्म्य-ज्ञान पूर्वक गुण-संकीर्तन स्तुति कहलाता है, किन्तु केवल प्रेमावेश में की गयी स्तुति तो स्नेहोद्गार-रूप लालना ही कही जायेगी। वस्तुत: आपकी स्तुति अशक्य है। क्योंकि आपकी महिमा अनंत है। इस लालना रूप गुण-कीर्तन की भी मेरे में जो शक्ति है, वह केवल आपकी कृपा से। इसी आशय को लेकर प्रस्तुत श्लोक में अस्तु शब्द का प्रयोग किया गया है - **अतोऽस्तु तव लालना**।'

सुरधुनी परं संगमात् तवैव भुवि कीर्तिता- अब, यहां प्रश्न किया जा सकता है कि तनु-नवत्व फल-दान की शक्ति गंगा में भी तो है, फिर यदि श्रीयमुना की स्तुति अशक्य है तो क्यों न इस फल की प्राप्ति के लिये गंगा की ही स्तुति की जाये ? इसके उत्तर में यह जान लेना होगा कि प्रथम तो गंगा में तनु-नवत्व के फल-दान की शक्ति आयी ही कहां से ? वास्तव में, गंगा में, पुष्टिमार्गानुकूल फल देने की जो शक्ति है, अर्थात् उसमें साक्षात् श्री पुरुषोत्तम की सेवा के उपयुक्त अलौकिक-देह प्राप्त कराने की जो सिद्धि है, वह केवल श्रीयमुना की संगति के कारण। भूलोक में, गंगा का कीर्ति-संकीर्तन, श्रीयमुना के साथ, उसमे समागमनोपरांत ही, होने लगा। श्री यमुना से पृथक् गंगा की पुष्टि मार्ग में, न स्तुतिकी गयी, न महिमा गायी गई, और नही कोई उसमें सामर्थ्य मानी गयी '**न तु कदापि पुष्टिस्थितैः**' पुराणादि में, गंगा के माहात्म्य का अवश्य संकीर्तन हुआ है, किन्तु वह केवल गंगा का, श्रीयमुना संक्रमित-गंगा का नहीं। गंगा की सिद्धियों के प्रशस्तिपूर्ण उल्लेख यद्यपि सर्वत्र मिलते हैं, किन्तु, अश्वमेघ-यज्ञ के फल-दान में अथवा बहुत हुआ तो मोक्ष-दान में ही, इन सिद्धियों की सीमा परिसमाप्त हो जाती है, तदुपरांत, यह सभी सिद्धियां, मर्यादा-मार्गीय ही है जिनका पुष्टि-मार्ग में कोई मूल्यांकननहीं। वस्तुत: मर्यादा मार्ग में कोई विशिष्ट-उपलब्धि नहीं। इस मार्ग में, वेद और पुराण के केवल श्रवण द्वारा भगवान् का माहात्म्य जान लेने के उपरांत, तदुपदिष्ट साधन करते रहने पर, कहीं भगवान् के स्वरूप-मात्र का शास्त्रीय शाब्दिक ज्ञान ही प्राप्त किया जा सकता है, और इस ज्ञान का भी अधिकाधिक फल अंत में क्या मिलता है ? केवल मोक्ष। मर्यादा मार्ग में इतना ही है, और पुष्टि-मार्ग में ? पुष्टि मार्ग, मोक्ष की गंध से दूर रहता है। **दीयमानं न गृह्णन्ति** मोक्ष का स्पर्श भी अरुचिकर है। पुष्टि-मार्ग, नि:साधन जीव को, सहज अनुग्रह करने वाले पुष्टि-प्रभु से, साक्षात्कार कराता है। भजनानंद की अभिलाषा वाले भक्त तो उसी की स्तुति करेंगे, जो उनके

भजनानन्द रूप पुरुषार्थ-प्राप्ति में उपकारक होता है। इसीलिये, वे पुष्टि-मार्गीया श्रीयमुना की ही प्रार्थना करते हैं, श्री यमुना से पृथक्, केवल गंगा की नहीं। मर्यादा-मार्गीय-जीव, केवल गंगा ही की जो स्तुति करते हैं, वह श्रीयमुना के स्वरूप से अपनी अनभिज्ञता के कारण। पुष्टि-मार्गीय-जीव, श्रीयमुना के स्वरूप को जानते हैं। अतः श्रीयमुना के संबंध से ही गंगा की स्तुति करते हैं, अन्यथा कदापि नहीं - **'न तु कदापि पुष्टिस्थितैः'**

तदुपरांत, गंगा केवल चरण-पद्मजा होने के कारण सेवोपयोगी देह का संपादन अवश्य कर सकती है, किन्तु भक्ताभिलषित सेवोपयोगी-देह संपादन की शक्ति का उस में सर्वथा अभाव है - **'तथाच सेवोपयोगी-देह-संपादकत्वं गंगाया अस्ति, परं नाऽभीष्ट सेवोपयोगी-देह-संपादकत्वम्। तेन नाऽन्यथा सिद्धिः** (श्री.पु.)। भगवान् के सर्वाङ्ग से प्रस्रवित, रति-श्रम-जल-रूपा श्रीयमुना के स्वरूप से, पुष्टि-लीलास्थ, जीव ही परिचित है, श्रीयमुना की संगति में ही, गंगा, उनकी स्तुति का विषय बन सकी है।

श्रीहरिरायजी के अनुसार, इस श्लोक में, **'भगवद्-प्रियत्व-संपादन'** रूप ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है। श्रीपुरुषोत्तमजी के मत में, **'तनु-नवत्व'** - संपादन रूप ऐश्वर्य का निरूपण हुआ है।

श्रीकुंभनदास

श्री यमुने अगनित गुन गिने न जाई,
यमुने तट रेणु तें होत हे नविन तनु, इनके सुखदेन की कहा करो बडाई।।
भक्त मांगत जोई देत तेही छिनूं, सो ऐसी को करे प्रण निभाई।
कुंभनदास लाल गिरिधरन मुख निरखत, कहो कैसे कर मन अघाई।।

स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि प्रिये
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः।
इयं तव कथाऽधिका सकल-गोपिका-सङ्गम-
- स्मरश्रमजलाणुभिः सकल-गात्रजैः सङ्गमः।।८।।

(८)

हे पद्मा-सपत्नि ! प्रिय यमुने ! स्तुति अशक्य तेरी अविकल ।
हरि-सह-अनुसेवित-पद्म्मा तो, देती मुक्ति-सौख्य केवल।।
गोपी-जन-सह-रति श्रम-जल, जो सकल-अवयवों से प्रस्तुत।
उससे तेरी एक रूपता यह तब-कथा अधिक विश्रुत।।

अनुवाद : लक्ष्मी के समान सौभाग्य-शालिनी एवं हरि की प्रिया है श्रीयमुने! आपकी स्तुति कौन कर सकता है ? क्योंकि, हरि के साथ की गयी अपनी सेवा से, अथवा हरि-सेवा के पश्चात् की गयी अपनी सेवा से, लक्ष्मी स्वसेवक को मोक्ष-पर्यंत का ही सुख दे सकती है। किन्तु, आपकी यह कथा (लक्ष्मी की अपेक्षा) अधिक है, क्योंकि आपका संगम उन प्रस्वेद-बिन्दुओं से है, जो सकल गोपाङ्गनाओं के साथ रमण-सुलभ-श्रम के कारण भगवान् के सभी अवयवों से प्रस्रवित हुये। अर्थात्, सकल गोपीजनों से रमण-कालीन श्रम के कारण समग्र अवयवों से प्रस्रवित-प्रस्वेद बिन्दुओं से आपका संबंध है, अतः आपके सेवक को भी इन्हीं प्रस्वेद-बिन्दुओं से संगम-संबंध-प्राप्त होता है। (इस तरह आप, भगवान् की सकलाङ-संबंधिनी है, लक्ष्मी का भगवान् के केवल एक ही अङ्ग-वक्षस्थल-से संबंध है। द्रवीभूत-रस से स्व-संपूर्ण, केवल आप ही की सेवा में तत्पर जीव को, मोक्ष से भी अधिक भगवद्-रस-रूप सिद्धि, सहज ही मिल जाती है।)।।८।।

व्याख्या- जिसकी संगति से, लोक-वन्द्य-गंगा भी, स्तुति पात्र बन गयी, ऐसी महिमामयी श्रीयमुना की स्तुति करने में कौन समर्थ है उनकी स्तुति अशक्य है। उसकी महिमा को जो जानता है, वही उसकी स्तुति कर सकता है। श्रीयमुना के स्वरूप को कौन जान सकता है ? उनकी महिमा अगम्य है। उनकी स्तुति करने में कोई समर्थ नहीं!! **स्तुतिं तव करोति कः** ?

वस्तुतः, लोक तथा वेद में भी सर्वत्र, भगवान् से संबंधित ही स्तुति के योग्य माना गया है। भगवान् से, जिसकी जितनी निकट संबंधिता, उसकी उतनी ही अधिक स्तुति-पात्रता **'संबंध-तारतम्येन स्तुत्यत्व-तारतम्यम्।'** लक्ष्मी का भगवान् से इतना निकट संबंध है कि वह सर्वदा उनके वक्षः स्थल से ही आश्लिष्ट

।। श्री कीलसलिलायै नमः ।।

रहती है। तदुपरांत, भगवान् की समग्र पत्नियों में, लक्ष्मी स्वतंत्र सौभाग्यशालिनी है। अवशिष्ट-पत्नी-समूह लक्ष्मी की अंश-रूप अत एव लक्ष्मी के आधीन है। इतना ही नहीं, व्रज-सुंदरी-वृंद ने केवल व्रज में ही भगवद्-आचरित-लीला के सुख की अनुभूति की है, अन्यत्र नहीं। भगवान् द्वारा अन्यत्र आचरित-लीला के समय को तो, उन्हें भगवद्-विरह में ही बिताना पड़ा। किन्तु, लक्ष्मी तो उनके साथ, उनकी व्रज-क्रीड़ा से सावकाश अवस्था में भी, सुखानुभूति करती रहती है। इस तरह, अपने भगवत्-सह निकट संबंध के कारण, लक्ष्मी अन्य सभी सेवकों की अपेक्षा, माहात्म्य में अधिक अतएव स्तुति-पात्र मानी जाती है। लक्ष्मी की तरह, उनकी सपत्नी श्रीयमुना भी भगवान् की स्वतंत्र सौभाग्यास्पदा-पत्नी है। वह न तो लक्ष्मी की अंश है न उनके अधीन ही। भगवद्-पत्नी-सुलभ-सौभाग्य से संपन्न श्री यमुना, भगवान् से स्वतंत्रतया निबद्ध है। इस तरह लक्ष्मी तथा श्रीयमुना दोनों ही समान कक्षा के है। दोनों में असमानता है। इस स्थिति में यदि लक्ष्मी की स्तुति शक्य है, तो फिर श्रीयमुना की ही स्तुति क्यों अशक्य हो गयी ?

कमलजासपत्नि-प्रिये!- श्रीयमुना, लक्ष्मी से अधिक है। लक्ष्मी अपनी भगवत् सह निकट-संबंध में तथा सौभाग्य सम्पन्नता में ही श्रीयमुना से साम्य रखती है-इससे अधिक नहीं। यहाँ तक ही लक्ष्मी के गौरव की सीमा है-आगे नहीं। लक्ष्मी के माहात्म्य को यह इतना सर्व-विदित है, तदनुसार उसका माहात्म्य, स्तुति का विषय बनाया जा सकता है। श्रीयमुना की महिमा निःसीम, अनन्त, अगम्य है। लक्ष्मी, भगवद्-पत्नी होने के कारण, उनके अवश्य निकटतम है, तथापि इतना होते हुये भी, श्रीयमुना की भगवत्-सह निकटता, लक्ष्मी की अपेक्षा विलक्षण, अतएव वाणी से अतीत है, क्योंकि वह भगवान् की प्रिय-अंतरंग है। पत्नी होना एक बात है किन्तु, प्रिय होना दुर्लभ। निकटता की इयत्ता, पत्नी संबंध में ही, परिसमाप्त नहीं हो जाती, प्रत्युत, प्रियत्व रूप संबंध की अनन्त-रसमयता में, उसका अंत ही नहीं।

लक्ष्मी, वस्तुतः भगवद्-प्रियत्व से वंचित ही रही। भगवान् ने स्वयं कहा है कि मेरे साधु-भक्तों के बिना, मुझे अपने में तथा अपनी अत्यन्त निकट लक्ष्मी में भी कोई रुचि नहीं

'नाहमात्मान माशासे मद्-भक्तैः साधुभिर्विना
श्रियं चात्यन्तकीं राजन्! एषां गतिरहं परम्।'

यहां **'भक्तैः'** से मर्यादा-मार्गीय भक्तों का निर्देश किया गया है। अर्थात् लक्ष्मी, भगवान् के मत में, मर्यादा भक्तों से भी न्यून है। जहाँ, मर्यादा-मार्गीय भक्तों के प्रति अपनी प्रियता की यह घोषणा की है, तो फिर पुष्टि-पुष्टिस्थ भगवदीया श्रीयमुना के प्रति प्रियता के प्रसंग में, लक्ष्मी का नामोल्लेख भी कहा ?

श्रीयमुना, स्वरूपतः वह रस रूप है, जिसको वाणी अपना विषय नहीं बना सकी, जो मन से भी अगम्य है - **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** लक्ष्मी भी आनन्दमय स्वरूपा है, किन्तु यह आनन्दमयता, उस ब्रह्म की है, जो ब्रह्म, प्रमाण से सिद्ध है - **ब्रह्मानन्दरूपा सा** (सुबो.) 10-13-76 इसीलिये लक्ष्मी का माहात्म्य वेदादि शास्त्रों से प्रमाणित अत एव सर्वशः ज्ञान का विषय है श्री यमुना, प्रमाण से अतीत अत एव साक्षात् प्रमेय रूप श्री हरि-स्वरूप मयी हैं श्री यमुना का महात्म्यस्वतः सिद्ध, अतः, स्वयं **'प्रमेय'** रूप-

साक्षात् है। सिद्ध को साधनानन्तर से सिद्ध करना असंगत है। यहाँ तक, श्रीयमुना की महिमा के आधिक्य का प्रतिपादन प्रमेय द्वारा किया गया, अब वही साधन द्वारा निरुपित किया जाता है।

'हरेर्यदनुसेवया'- प्रमेय एक मात्र श्रीहरि ही है - **'प्रमेयो हरिरेवैकः'**। प्रमेय ही एक मात्र सेव्य माना गया है। प्रमेय की सेवा ही साधन है **'तत्सिद्धयै तनुवित्तजा।'** लक्ष्मी कदापि सेव्य नहीं है, क्योंकि वह 'प्रमेय' नहीं है। प्रमेय-रुप श्रीहरि के साथ ही, वह सेव्य हो सकती है, अधिक हुआ तो, श्री हरि की सेवा के अनन्तर उसकी सेवा की जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीयमुना की तरह लक्ष्मी स्वतंत्रतया, हरि से पृथक्, कदापि सेव्य नहीं मानी गयी। हरि से पृथक्, केवल लक्ष्मी, विभूति रूप है, पुष्टि-मार्ग में विभूति-रूप की सेवा का निषेध है। फल-दान में भी लक्ष्मी, अपेक्षाकृत अत्यन्त न्यून है। श्रीहरिसे पृथक्-अकेली लक्ष्मी की सेवा, महान् अनर्थ-रूप अतएव मोक्ष की भी विघातक है। अर्थात्, यदि केवल, (श्री हरि सेवा के अनन्तर भी नहीं), केवल लक्ष्मी की ही सेवा की जाये तो वह स्व-सेवक को धन-संपदा रूप ही फल का दान करेगी। विषयासक्ति की मूल, धन-संपदा तो, जीव को श्रीहरि से विमुख कर देती है - **'अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन् उच्चैर्न मां स्मरेत्'** धन-मत स्मृति-भ्रष्ट होता है, स्मृति-भ्रष्ट को भगवत्-स्मृति कैसी ?-

'भवति सौख्य मामोक्षतः'- यदि हरि-सहित, अथवा हरि की सेवा के अनन्तर, गौण-भाव से भी, लक्ष्मी की सेवा की जाये, तो भी, वह अपने सेवक को अधिक से अधिक, सालोक्यादि मोक्ष-पर्यंत का सुख उपलब्ध करा सकती है। अतः, वैकुंठ में भी, लक्ष्मी के सेवकों को, सालोक्यादि मोक्ष-मात्र का ही सुख होता है-इससे अधिक नहीं। लक्ष्मीकी स्वार्थ वृत्ति है, श्री हरि के साथ अपने नित्य-संयोगरूप-सायुज्य-सुखका दान वह स्व-सेवक को कदापि नहीं करती। स्व-भोग्य वस्तु, कोई अन्य को नहीं दी जाती **'लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुंक्ते न तत् यच्छति कर्हिचित्।'** श्रीहरि-सायुज्य-सुख तो परम भगवदीया, प्रमेय-स्वरूपा श्रीयमुना की सेवा से ही संपाद्य है, साधनान्तर से नहीं।

लक्ष्मी केवल मोक्ष-सुख ही दे सकती है। वास्तव में, भगवदीय को मोक्षादि सुख के प्रति एकांत अरुचि रहती है-दिये जाने पर भी ग्रहण नहीं करते **'दीयमानं न गृहन्ति बिना मत्सेवनं जनाः-'** मोक्ष से भी अधिक भजनानंद है, यही 'महा-आनंद' है। यह भजनानंद अदेय कहा गया है। मोक्ष देय है, भक्ति अदेय। **मोक्षं ददाति, न कर्हिचित्स्म भक्तियोगम्।** इसी भजनानंद रूप महारस की उपलब्धि श्रीयमुना अपने सेवक को कराती है। श्रीयमुना भजनानंद स्वरूपा है, अपने इसी अदेय-स्वरूपानंद से वह स्वसेवक को संपन्न कर देती है। लक्ष्मी, भगवत-सह अनुभूत सुख को अपने ही लिये, किन्तु श्रीयमुना, अपने इसी सुख को, स्व-सेवक के लिये, सुरक्षित रखती है - **स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु।** श्रीयमुना की परार्थ-वृत्ति है, लक्ष्मी की स्वार्थ-बुद्धि। स्व-सेवक के लिये, स्व-सुख के त्याग की, इस अचिंत्य महिमा में, लक्ष्मी, श्रीयमुना से कहीं पीछे रह जाती है। इस तरह प्रमेय, प्रमाण, साधन, फल तथा स्वभाव में, लक्ष्मी अपेक्षया श्रीयमुना के परम उत्कर्ष का निरूपण किया गया।

'इयं तव कथाऽधिका'- अब, **'इयं तव कथाऽधिका'** पंक्ति से, श्रीयमुना के सर्वाधिक उत्कर्ष की कथा कही जाती है। वैकुंठ में विराजमान श्रीहरि के वक्षः स्थल रूप एक ही अवयव से संबंधित लक्ष्मी की अपेक्षा, उनके सर्वांग से, रोम रोम से संबंध रखने वाली श्रीयमुना की यह कथा, वस्तुतः अधिक विलक्षण है। श्रीयमुना के इस कथारस के समक्ष ब्रह्माण्ड की निश्चित-रस-निधि केवल रसाभास ही है-मोक्ष-रस भी नितांत नगण्य है-हे भगवन्! आपकी महिमा रूपी अमृत सिंधु के बिन्दु का एक ही बार आस्वादन करके, परम-भागवत एकान्तिन-भक्तजन, सभी प्रकार के दृष्ट और श्रुतसुखों को, जो आभास मात्र ही हैं, सर्वथा भूल जाते हैं - **'अथ ह वाव तव महिमाऽमृत-समुद्र विप्रुषासकृल्लीढया विस्मारित-दृष्ट-श्रुतसुखलेश-भासाः परमभागवत एकान्तिनः'**

श्रीयमुना की यह कथा क्या है ? यह कथा, श्री यमुना के उस अनिर्वचनीय-स्वरूप की है, जिसकी अभिव्यक्ति वाणी द्वारा सर्वथा असम्भव है। श्रीमद्-आचार्य-चरण ने, प्रस्तुत श्लोक की अन्तिम पंक्ति-द्वय में, श्रीयमुना के रमणीयत्व का जो निरूपण किया है, उससे आपका **'वाक्-पतित्व' विरूद स्वतः** सिद्ध है।

'-सकलगोपिकासङ्गम-'

-स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैसङ्गमः।

सकल अर्थात् संपूर्ण कलाओं सहित श्रीपूर्ण-पुरुषोत्तम ने, व्रज-सुंदरी वृंद से रमण किया। आनंद के अनन्त-अमृतसिंधु उच्छलित हो उठे। रमण-सुलभ-श्रम के कारण, गोपाङ्गनाओं सहित उस अगणितानन्दमय आदि-मूर्ति श्रीकृष्ण के आनन्द-मात्र कर, पाद, मुख, उदर, आदि प्रत्येक अवयव में से, उनके श्रीविग्रह के विविध-रति-रस से परिपूर्ण रोम रोममेंसे, इसी उच्छलित आनन्द के बहिः प्रस्रवित-प्रस्वेद-बिन्दुओं से, श्रीयमुना के प्रत्यंग का, उसके रोमरोम का, सृजन हुआ है - संगम हुआ है। सात्विक, तामस तथा राजस गोपीजनों की श्वेत, श्याम तथा रतनार वर्णवाली प्रस्वेद-बिन्दु-धारायें, शून्यवद्-गाढ-नील वर्ण की प्रस्वेद-विदु-धाराओं में विलीन हो गयी। यही, अनिर्वचनीय गुणातीत-द्रवरसात्मक-तत्व, श्रीश्यामा के त्रिभुवनाद्भुत-कमनीय-विग्रह रूप से उच्छलित-हो उठा।

लीला-सामयिक प्रभु-श्रम-जल संबंधिनी श्रीयमुना के अंतरंग-निगूढ़ स्वरूप की अभिव्यक्ति, यथाक्रम इन चार विशेषणों से की गयी है : **1. सकल-गोपिका-संगम 2. स्मर-श्रम-जलाणुभिः 3. सकल-गात्रजैः 4. संगमः** अर्थात् श्रीयमुना परम-काष्ठापन्न-पुष्टि-मार्ग की अंतरंग भगवदीया है, सर्वदा स्मर-श्रम-जल-बिन्दु रूप रस से परिपूर्ण हैं, समग्र-गात्रों से निःसरित-रस से परिपूर्ण होने के कारण, स्वसेवक को स्व-समान गुणों से संपन्न करती है। इस रस से, अपनी संगति (संगम) के कारण, भगवद्-लीला की सहास्वादिनी (लीला-मध्य-पातिनी) हैं। जिस तरह मिट्टी के कच्चे घट में, अग्नि-के योग से पक्वता आ जाती है, उसी तरह श्रीयमुना, स्व-सन्निधि में आने वाले जीव को, तनु-नवत्व से संपन्न करती

हुई, उसे, आवरण-अनाच्छन्न भगवद्-लीला की अनुभूति करने योग्य बना देती है। '**सकल-गात्रजै संगम**' अपने संपर्क में आने वाले जीव की देह को अलौकिकत्व से समन्वित करने की तो श्रीयमुना की प्रकृति है, क्योंकि, भगवान् सहित सकल गोपीजनों के प्रत्येक मात्र से प्रस्रवित रति-श्रम-सुलभ प्रस्वेद के रसबिन्दुओं से, आपकी एकरूपता-एकतानता है। भगवद्-रस से अपनी इस परिपूर्णता के कारण, आपका अनन्य भाव से भजन करने वाले जीव को भी, इसी रस का दान परमोदारता पूर्वक कर देती है, यही आपकी सर्वाधिक, किन्तु सुस्पष्ट, महती विलक्षणता है।

श्रीहरिरायजी के अनुसार, इस श्लोक में श्रीयमुना के तनु-नवत्व संपादन-रूप ऐश्वर्य का निरूपण है। श्रीपुरुषोतमजी के मत में प्रभु के लीला कालीन-श्रम-जल बिन्दुओं से संबंध-संपादन रूप ऐश्वर्य का उल्लेख किया गया है।

श्रीगोविन्ददास

श्याम संग श्याम व्है रही श्री यमुने,
सुरत-श्रम बिंदुतें सिंधुसी ह्वे चली, मानो आतुर अली रही न भवने।।
कोटि कामहिं वारों, रूप नेनन निहारों, लाल गिरधरन संग करत रमने।।
हरखि गोविन्द प्रभु निरखि इनकी ओर, मानों नवदुलहनी आई गोनें।।

राधाधर-स्वाद-सुधानुदिग्ध-स्फुरद्-रसाऽस्याम्बुरुहावतारः।
प्रतिक्षणं मे रूचिरः स भूयात्-दृशोश्चमत्कारपरपरायै ॥

तवाऽष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः।
तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च संतुष्यति
स्वभाव-विजयो भवेत् वदति वल्लभः श्रीहरेः ।।९।।

(९)

तब इस अष्टक को रवि-तनये ! प्रतिदिन जो नियमित पढता।
होता मुक्त समस्त पाप से, भक्ति-भाव हरि में बढ़ता।।
जिससे, सकल-सिद्धियां मिलतीं, श्री गोविंद तुष्ट रहते।
जय, स्वभाव पर निश्चय होता, श्रीहरि के 'वल्लभ', कहते।।

अनुवाद : 'हे सूर्यपुत्रि श्रीयमुने! आपके इस स्तोत्र-अष्टक का प्रसन्नतापूर्वक पठन करने वाले के समस्त पापों का क्षय हो जाता है एवं भगवान् मुकुन्द में रति की निःसंदेह प्राप्ति होती है। श्रीमुकुन्द में इस रति से सर्वात्म-भाव आदि संपूर्ण सिद्धियां स्वतः उपलब्ध हो जाती है, तथा मुररिपु भगवान् सहित स्वामिनी वर्ग संतुष्ट होते हैं। इतना ही नहीं, स्वभाव पर विजय मिलती है श्रीहरि को प्रिय मैं वल्लभ (श्रीयमुनाष्टक के स्तोता श्रीवल्लभाचार्य) इसे प्रमाणित करता हूँ-कहता हूँ।।९।।

व्याख्या : इस प्रकार, भक्तों को कलि-सुलभ दोषों के भय से विमुक्त करने वाली श्री कालिंदीकी, उनके अष्टविध ऐश्वर्यो का प्रतिपादन करने वाले अष्ट पद्यों द्वारा अलौकिक-प्रकार से स्तुति करके, अब, इस स्तोत्र के अनन्य भाव से पारायण की फल श्रुति का निरूपण, प्रस्तुत, अंतिम श्लोक द्वारा किया जाता है। यद्यपि, आद्य-शंकराचार्य जैसे महानुभावों द्वारा विरचित श्रीयमुना के अनेकों स्तोत्र वर्तमान हैं, तथापि, प्रस्तुत श्लोक में निरूपित फल की उपलब्धि तो श्रीयमुना के इसी स्तोत्र पारायण से संभव है, अन्यथा कदापि नहीं, क्योंकि श्रीयमुना के यथार्थ स्वरूप का परिचय तो प्रस्तुत स्तोत्र से ही प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीयमुना के इस स्तोत्र का पठन करने वाले को, समग्र आपदाओं की, पाप-पुंज की, निवृत्तिपूर्वक, श्रीमुकुंद के प्रति निःसंदेह रति की प्राप्ति होती है। **नराणां क्षीणपापानां** कृष्णे भक्तिः प्रजायते। श्रीयमुना के स्तोत्र-पारायण करने वाले को, इसके पाठ-मात्र से, सर्वात्म-भाव आदि सभी सिद्धियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। भगवद्-प्राप्ति के मार्ग में अनेकों विघ्न कहे गये हैं। दोष के लेश मात्र की संभावना भी, भगवद्-प्राप्ति में महद्-अन्तराय रूप हो जाती है। इसीलिये, मान-भाव भक्त प्रति द्वेष आदि अपरिहार्य विघ्नों की उपस्थिति में, भगवद्-रति असंभाव्य है, किन्तु श्रीयमुना-स्तोत्र के पठन से संतुष्ट भगवान्, भक्त के इस प्रत्यूह-व्यूह का स्वयं निःशेष समुन्मूलन कर देते हैं। भक्तों के प्रतिबंधों को निवृत्त करते रहने की, भगवान्

की एक, सहज-वृत्ति है। भगवान् को मुररिपु का जो विरुद मिला है, वह उनको, अपने इसी स्वभाव के कारण। अतः इस स्तोत्र के परायण मात्र से स्वयं मुररिपु-भगवान् अपने को कृतकृत्य मानते है तथा स्तोत्र-पठित को स्व-कृपास्पद बना लेते हैं। लोक में भी स्वकीय के उत्कर्ष संकीर्तन से किये परितोष नहीं होता?

श्रीयमुना, भगवान् को निरतिशय, नित्य-प्रिय हैं, क्योंकि भगवान् के हार्द्र से एकांत परिचय रखने वाली, उनकी अंतरंग-अभिज्ञा वाली यदि कोई है तो वह श्रीयमुना ही। ऐसी स्वकीया श्रीयमुना के उत्कर्ष का संकीर्तन करने वाले से, भक्त के प्रतिबंध निवारक भगवान् मुररिपु, निश्चयेन परितुष्ट हो जाते हों तो उसमें आश्चर्य ही कैसा?

श्रीयमुना, व्रज-सुंदरी-वृंद को भी अतिशय प्रिय है। कात्यायनी-व्रत प्रसंग में भगवद्-प्राप्ति तथा रासोत्व में भगवद् अनुभूति, श्रीयमुना के सेवन तथा सानिध्य से ही तो उन्हें हुई थी। अतः, श्रीयमुना के गौरव-संकीर्तन से, स्वामिनी-वृंद क्यों न हर्षान्वित होंगी? यहां **'मुररिपुश्च संतुष्यति'** का अर्थ इस तरह है, मुररिपुः च स्वामिनीवर्गश्चसंतुष्यति! मुररिपुश्च में च का अभिप्राय है - और स्वामिनी वर्ग अर्थात् श्रीयमुना की माहात्म्य-स्तुति, भगवान् और स्वामिनी वर्ग-इस उभय-दल के परितोष की हेतु है।

इस स्तोत्र के अध्येता को, भगवान् श्री मुकुन्द, परितोष-पूर्वक अपनी भक्ति प्रदान करते हैं। श्री मुकुंद, जीव मात्र को, जब प्रसन्न होते हैं तब, प्रायः मुक्ति का ही दान करते हैं। अपने इस स्वभाव के कारण वह मुकुंद कहलाते हैं। वस्तुतः मोक्ष देने वाले को मुकुंद कहते हैं। **मुकं मोक्षं ददाति इति मुकुंदः**- यही मुकुंद नाम की निरुक्ति है। भक्ति अप्राप्य कही गयी है, क्योंकि भगवान् के पास इसकी तुलना में केवल यही वस्तु है, अतः अदेय है। भक्ति का अर्थ है, भगवत्-सह-संबंधिता। भगवदीय-तत्व से समन्वित ही भगवान् के साथ संबंध-प्रास कर सकता है। अतः भक्ति विरल ही मानी जाती है -

'राजन! पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां, दैवं, प्रियः कुलपतिः, क्व च किंकरो वः।

अस्त्वेव मङ्ग! भगवान् भजतां मुकुंदो, मुक्तिं ददाति, न कर्हिचित्स्म भक्ति-योगम्।।'

अतः, भगवान्, भक्त प्रति जब अत्यंत परितुष्ट होते हैं, तभी वह उसे इस अदेयवस्तु का दान करते हैं। स्वभावतः मोक्ष ही देने वाले मुकुन्द, अपनी निरतिशय-प्रिय श्रीयमुना के गुण-संकीर्तन-प्रशस्ति से प्रसन्न होकर, अपने स्वभाव के प्रतिकूल होते हुये भी, इस स्तोत्र के अध्येता को, अपनी विरल-भक्ति के दान से कृतकृत्य कर देते हैं। भगवान् के स्वभाव-परिवर्तन की यह कथा विलक्षण है!!!

अब, इस स्तोत्र के पारायण से, जीव के स्वभाव की परावृत्ति का निरूपण किया जाता है। जीव में आनंदांश-तिरोहित रहता है, इसी कारण से तो वह जीव कहलाया-**'आनंदांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो येन जीवभावः'** आनंदांश की तिरोभाव अवस्थावाला जीव, अविद्या के दुरंत-पाशों से आबद्ध रहता है। जीवगत **'अविद्या'** से ही उसका जीवत्व है। जिस तरह पशु में पशुत्व ही उसका स्वभाव है, उसी तरह

जीव में अविद्या ही उसका स्वभाव है। अत: जीव-मात्र स्वभाव से दुष्ट है - **जीवा: स्वभावतो दुष्टा:।** जीव-भाव के संक्रमण-समकालीन यह दोष है। यह दोष क्या है ? विस्मृति अपने अङ्गी की विस्मृति, अर्थात् भगवद्-पराङ्मुखता ही दोष है। जीव-अपने इस दोष पर, श्रीयमुना के प्रस्तुत-स्तोत्र के अनन्य पारायण द्वारा, निश्चयेन विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। पराङ्.मुखता का अन्त-र्मुखता में परावर्तन होता है तथा बहिर्मुखता की निवृत्ति होते ही कर्म-वासनाओं की पुन: उत्पत्ति स्थगित हो जाती है। श्रीयमुना के प्रति अपनी नि:सीम प्रीति के आग्रह से, प्रेम-विवश भगवान्, स्तोत्र-संकीर्तक-जीव के हृदय में आविर्भूत होते हैं। आनंदांश के स्फुरण मात्र से, पंच-पर्वात्मक-अविद्या का अंधकार विलीन हो जाता है और जीव कृतार्थ, जीवत्व की निवृत्ति होती है - भगवदीयत्व का आविर्भाव-अर्थात् दुष्ट स्वभाव का सुष्ठु-स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है।

अनेकों जन्म के तत्वपश्चरण से भी दुसाध्य यह कृतकृत्यता, स्वभाव पर यह विजय, स्तोत्र के पाठमात्र से क्यों कर सिद्ध मानी जा सकती है ? इसके समाधान में, इस असंभाव्य चमत्कृति की प्रीतीति के प्रतिपादन में, क्या प्रमाण ? आप्त-वाक्य ही प्रमाण कहा गया है - **आप्त-वाक्यमेव प्रमाणम्**। स्वयं प्रीति करने वाले का कथन ही आप्त-वाक्य है। भगवत्-संबंधी ही भगवद्-अनुभूति कर सकता है। भगवान् के स्वरूप को वही जानता है जो निरंतर भगवत्-सानिध्य में रहता हो। श्रीमद्-वल्लभाचार्य साक्षत् श्रीहरि-संबंधी है। आप श्री श्रीकृष्णास्य है। श्री हरि के वल्लभ-प्रिय है। अत: जीव-मात्र पर परम-अनुग्रहपूर्वक, आप श्री स्वयं कहते हैं **वदति वल्लभ:** श्री हरे: श्री हरि को प्रिय वल्लभ, यह कहते हैं। इस कथन में, सत्यत्व की प्रतीति, श्रद्धा का विषय है और श्रद्धा का उदय भगवद्-कृपा बिना असंभव है। तो, फिर क्या इस कथन के रहस्य की अनुभूति करने वाला जीव पृथ्वी पर है ? भगवद्-अनुग्रह में काल, कर्म तथा स्थल कभी नियामक नहीं होते!!!

- इति श्री -

जयति श्री यमुने प्रकट कल्पलतिके,
अष्टविध सिद्धि अद्भुत वैभव सकल स्वजन विख्यात स्वाधीनपतिके।।
केलि श्रम सुरत पथ रूप व्रजभूप को, पुत्र पयपानदे विश्वमाता।
अंग नूतन करत पुष्टि तव अनुसरते त्रिदल रस केलिकी अमितदाता।।
रहत यमद्वार सें मुक्त सुखचारतें नाम त्रय अक्षर उच्चार कीने।।
उभयलीलाविशिष्ट व्रजप्रियकुमारिका सूर्य प्रिया वदत रस रंग भीने।।
अनावृत ब्रह्मतें सदावृत व्है रही कनकशाखा विटप श्याम-वल्ली।।
सदा प्रफुल्लित द्वारकेश अवलोक के नित्य आनंद आभीर-पल्ली।।

अथ यमुनाष्टपदी अर्थ

आशय : कायिक वाचिक और मानसिक इन तीनों प्रकार के पापों को नष्ट करने में समर्थ, अत्यन्त प्रकाश स्वरूप श्री यमुनाजी ! हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं, रासमण्डल के अलंकार श्रीनन्दनन्दनकी प्राप्ति के बाधक विघ्नों को कृपया शीघ्र दूर कीजिये, मथुरा से गोकुल जाते समय अपने प्रियतम श्रीवासुदेव भगवान् को मार्ग प्रदान करने वाली तथा श्रीकृष्ण ही हमारे स्वामी प्राणपति होय इस कामना से उग्र तप करने वाली ब्रजकुमारियों की कामना को पूर्ण करने वाली हे श्री यमुनाजी ! हमें कृष्ण भक्ति रूप धन प्रदान कीजिये, अन्य हमें कुछ भी नहीं चाहिये।

भ्रमरों के समूह से भरी हुई कमल श्रेणी के बहाने से स्वयं श्रीकृष्ण तथा उनके अत्यन्त अनन्य भक्तों के हृदय कमल को धारण करने वाली तथा सर्वदा अत्यन्त बढ़े हुए सर्व क्लेशहारी भगवान् श्रीकृष्ण के चिन्तन से उत्पन्न श्रीकृष्ण की समान रूपता (श्यामवर्णता) से अपने हृदय को भी प्रकाशित करने वाली श्रीयमुनाजी मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।।१।।

विविध भाँति के कुसुमों के मकरन्दवशात् इकट्ठे होकर नाना प्रकार की क्रीड़ाओं को करने वाले भ्रमर वृन्द से समलंकृत, अत्यधिक आनन्दस्वरूप है श्री यमुनाजी ! तुम्हारे तटपर समुत्पन्न अनेक प्रकार के पुष्पों से युक्त अपने श्याम जलकी कमनीयता से गोपीगण पूजित अन्यन्त आनन्दप्रद श्रीकृष्ण के शरीर को स्मृति पथ में ला देती हो ।।२।।

हे श्री यमुनाजी ! ऊपर लिपटे हुए अति स्वच्छ कमलों की लाल लाल कान्तिवाले पुष्प परागसे सुगन्धित इस श्यामवर्ण अपने जल स्वरूप शरीर से नाना प्रकार के अलंकारों से विभूषित व्रजांगनाओं के कुच कलश के कुंकुम से लाल हो जाने वाले श्री नन्दनन्दन के वक्षःस्थल का आप स्मरण कराती हो ।।३।।

रात्री में कुवलय रात्रि विकासी कमल स्वाभाविक ही विकसित होते हैं उसी को निम्नलिखित रीति से उत्पन्न करते हैं - हे श्रीयमुनाजी ! आप रात्रि में श्रीकृष्ण की अलौकिक लीला देखने के लिये अत्यन्त मनोहर कुवलय नामक सुन्दर नयनों को खोल देती हैं, किन्तु दो नयनों से रासेश्वर की लीलाओं का उचित रीति से साक्षात्कार नहीं हो सकता अतएव रसिकों में अग्रगण्य होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण की असंख्य लीलाओं का निरीक्षण करने के लिये आप श्री अति कमनीय असंख्य नयनों को धारण कर लेती हैं।।४।।

दिन में विकसित होने वाले कमल कुसुमों की इस प्रकार उपेक्षा कर रहे हैं। हे श्रीयमुनाजी ! रात भर जागकर एक टक दृष्टि से आपने श्रीकृष्ण लीलाओं को देखा है, उन्हीं जागरण से उत्पन्न कलियों से रंगे हुए लाल-लाल कमलरूपी नयनों से आप श्रीकृष्ण को दिन में देखा करती है और अत्यन्त आनन्द से भरपूर हो जाने वाली आप पुष्परस (मकरन्द) के बहाने से सर्वदा कमल सदृश नयनों से आनन्दाश्रुकी वर्षा किया करती है।।५।।

हे श्री यमुनाजी ! आपके तट पर निवास करने वाले विविध भांति के शुक तथा मैना इत्यादि पक्षियों के शरीर धारण करने वाले मुनियों का समूह नाना प्रकार के आप में वर्तमान अमृत सागर के समान असीम गुणों को गाया करते हैं और आप सर्वदा इस वृन्दावन में आत्मीय भक्तों के त्रिविधि तापहारी रासस्वरूप असीम आनन्द के सागर श्रीकृष्ण की सत्संगति प्राप्तकर सुशोभित होती हैं।।६।।

अत्यधिक सुरत के परिश्रम से उत्पन्न पद्मिनी स्त्रियों के शरीर से निकलने वाले कमलगन्धी स्वेद जल से विभूषित ब्रजांगनाओं की जलक्रीड़ा से बहुत प्रसन्न होने वाले तथा जल विहार में तत्पर व्रज युवतियों के कर्ण भूषणों के हिलने से उत्पन्न शब्दों के द्वारा तिरस्कृत और संगीत के साथ आनन्दित होने वाले भ्रमरगण के विनोद को चाहने वाली श्रीयमुनाजी आपको बारम्बार नमस्कार करता हूं ।।७।। (रास पंचाध्यायी में 'ताभिर्युक्तेः श्रमूमयोहितम्' अर्थात निवृत्यर्थ श्री यमुनाजी में जलविहार में निमित्त प्रभु पधारें हुए हैं। इस भाव का यहां पर अनुसंधान करना)

हे यमुनाजी ! अपने आत्मीय ब्रजवासियों की रक्षा के लिये पर्वतराज गोवर्द्धन को छत्र के समान धारण करने वाले श्रीकृष्ण भानु सुताजी के हृदयपर अत्यन्त रमणीय तथा सर्व विध तापनाशक करकमल को रखने वाला मुरली के वादन रूपी आह्वान से रस प्रकट करने वाले श्रीकृष्ण भगवान में श्रीविट्ठलेश्वर की अति प्रीतिशाली रति उत्पन्न कीजिये।।८।।

हे भानुनन्दिनी श्रीयमुने ! श्रीकोकिलावन-मल्लिकावन- द्रुमिलवन वेलावन आदि सुन्दर अवान्तर विशाल वनों से संयुक्त श्री वृन्दावन में मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिये। रसात्मक प्रभु की रसमयी लीला ही मेरे नयन के विषय हो। अर्थात् मैं भगवल्लीलाओं का अवलोकन करता रहूँ तथा आपके मनोरम तट पर ही मेरा निवास हो। यह था मनोरथ श्री गुसाँईजी के भावुक हृदय का।

श्री विठ्ठलेश विरचित यमुनाष्टपदी संपूर्ण।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य